विश्व-प्रसिद्ध
आध्यात्मिक गुरु
एवं
शैतान-कल्ट्स

विश्व-प्रसिद्ध

आध्यात्मिक गुरु एवं शैतान-करतूत

लेखक:

नेमिशरण मित्तल

प्रकाशक

फैमिली बुक्स प्राइवेट लिमिटेड

F-2/16, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002.

वितरक

पुस्तक महल, दिल्ली-110006.

विक्रय केन्द्र

1. 6681, खारी बावली, दिल्ली-110006. —————— फोन: 239314, 2911979
2. 10-B, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002. फोन: 3268292—93, 3279900

प्रशासनिक कार्यालय

F-2/16, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002.

फोन: 3276539, 3272783-84

शाखा कार्यालय

22/2, मिशन रोड (शामा राव कम्पाउंड), बंगलौर-560027 फोन: 245025

Published by

Family Books Pvt. Ltd.,

F-2/16, Ansari Road, Daryaganj, New Delhi-110002.

प्रथम संस्करण: अगस्त, 1990

मूल्य:

पेपरबैक संस्करण: 18/-

सजिल्द लायब्रेरी संस्करण: 30/-

मुद्रक:— क्वालिटी ऑफसैट प्रिन्टिंग प्रेस, नारायणा, नई दिल्ली-110028.

पुस्तक के विषय में

कुछ वर्ष पूर्व ज्ञान एवं चिंतन के धरातल पर एक औसत पाठक को अंतर्राष्ट्रीय घटनाचक्र से जोड़कर उसकी चेतना को प्रवुद्ध करते हुए, उसके ज्ञानक्षेत्र का चहुंमुखी विस्तार करने के उद्देश्य से प्रारंभ की गयी **विश्व-प्रसिद्ध *शृंखला*** अव निर्विवाद रूप से स्थापित हो चुकी है। लाखों-लाख पाठकों द्वारा इसे अव तक पढ़ा एवं सराहा जा चुका है और उनमें जैसे इस शृंखला की प्रत्येक पुस्तक को संग्रह करने की होड़-सी लग चुकी है। दरअसल इस शृंखला में प्रकाशित प्रत्येक पुस्तक अपने क्षेत्र से संवंधित सभी उल्लेखनीय पक्षों को उजागर करने वाला एक संग्रहणीय सचित्र ***मिनि एनसाइक्लोपीडिया*** है।

इस शृंखला की 40वीं पुस्तक ***विश्व-प्रसिद्ध आध्यात्मिक गुरु एवं शैतान-कल्ट्स*** आपके हाथों में है। इससे पूर्व इसी शृंखला में परोक्ष रूप से इसी विषय से जुड़ी पुस्तक *विश्व-प्रसिद्ध धर्म, मत एवं संप्रदाय* आपके द्वारा पढ़ी एवं सराही जा चुकी है।

सर्वोच्च चेतना का साक्षात्कार मन और वुद्धि से परे सूक्ष्म स्तर पर ही संभव है। अतः इस क्षेत्र में गुरु का महत्त्व वहुत वढ़ जाता है। गुरुओं के भी दो प्रकार हैं—एक तो वे गुरु हैं, जो अपने शिष्य को परमात्मा के सम्मुख आत्मसमर्पण की विद्या सिखाते हैं। ठीक इसके विपरीत दूसरे गुरु हैं, जो उससे केवल अपने प्रति आत्मसमर्पण की मांग करते हुए आत्म-प्रचार का मार्ग अपनाते हैं। पुस्तक में आपकी मुलाकात दोनों ही प्रकार के गुरुओं से होगी।

पुस्तक में **शिरडी वाले साईं वावा, मेहेर वावा, दीपनारायण महाप्रभुजी, स्वामी मुक्तानंद, रजनीश, ओंकारानंद, सत्य साईं वावा** आदि सहित अनेक भारतीय गुरुओं से लेकर शैतान के उपासक **ला वे, मेंसन, मून, जिम जोन्स, सिरागुसा** आदि अनेक पाश्चात्य गुरुओं की गुरु-संस्कृतियों (Cults) पर प्रकाश डाला गया है।

हम यहां यह भी स्पष्ट कर देना चाहेंगे कि इस पुस्तक का उद्देश्य किसी भी विचारधारा विशेष का खंडन-मंडन करना नहीं है—हमने तो मात्र सभी गुरुओं के वारे में प्राप्त जानकारी को तटस्थ भाव से पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया है। फिर भी यदि किसी गुरु विशेष के शिष्यों को ऐसा महसूस हो कि उनके पक्ष को पुस्तक में भली-भांति नहीं रखा गया है तो वे इस संवंध में हमसे संपर्क साध कर अपना पक्ष हमारे सम्मुख रख सकते हैं।

—संपादक

गुरु-क्रम
(भारतीय)

गुरु-क्रम
(पाश्चात्य)

श्री साईं बाबा

श्री साईं बाबा की गणना बीसवीं शताब्दी में भारत के अग्रणी गुरुओं, रहस्यवादी संतों और देव-पुरुषों में की जाती है। उनके अनुयायी उन्हें ईश्वर का अवतार, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ और सर्वव्यापी मानते हैं। वे अपने जीवनकाल में ही गाथा-पुरुष बन गये थे तथा आज भी समूचे विश्व में उनके अनुयायियों और उपासकों की संख्या में बहुत तेजी से वृद्धि होती जा रही है। समूचे भारत में उनके मंदिर स्थापित हुए हैं तथा वे देश के उन विरले देव-पुरुषों, गुरुओं और संतों की कोटि में आते हैं, जिनकी उपासना सभी जातियों और धर्मों के लोग भक्ति-भावपूर्वक करते हैं।

साईं बाबा की उपासना त्राता के रूप में होती है तथा जीवन और मृत्यु, सांसारिक इच्छाओं तथा उपलब्धियों के बंधन से मुक्ति प्राप्त करने के इच्छुक साधक और संपत्ति, स्वास्थ्य, संतान और सत्ता सरीखी सांसारिक वस्तुओं की कामना करने वाले लोग समान रूप से साईं बाबा के सम्मुख आशीर्वाद की याचना करते हैं। विदेशों में भी उनके मंदिर तेजी के साथ बन रहे हैं।

बाबा प्रकट हुए

साईं बाबा की जन्मतिथि तथा उनका जन्म-स्थान अभी तक रहस्य बने हुए हैं। उनके माता-पिता अथवा बचपन के बारे में कोई कुछ नहीं जानता। पहले-पहल उनके दर्शन शिरडी में एक नीम के पेड़ के नीचे 16 वर्ष के युवक के रूप में सन् 1854 में हुए थे। उस समय शिरडी महाराष्ट्र के अहमदनगर जिले के अंतर्गत राहाटा ताल्लुका का एक छोटा-सा गांव था। उस छोटी-सी उम्र में भी बाबा संसार की ओर से विरक्त और सिद्ध पुरुष प्रतीत होते थे।

सबसे पहले उनके दर्शन शिरडी की एक वृद्धा, नाना चोपदार की माताजी को हुए थे। वे वृद्धा देवी कहा करती थीं कि "उस समय बाबा बहुत सुंदर किशोर थे। वे नीम के पेड़ के नीचे यौगिक मुद्रा में विराजमान थे। वे गर्मी और सर्दी की परवाह किये बिना पेड़ के नीचे ही रहते थे। न वे किसी से घुलते-मिलते, न अंधेरी रात में डरते। वे तीन वर्ष तक वहीं रहे। इस बीच वे भिक्षाटन के लिए एक बार भी शिरडी गांव के भीतर नहीं गये।"

गांव के सभी लोग उन पर मोहित थे तथा वे उनके भोजन और वस्त्र आदि का प्रबंध स्वयं करते थे। जब भी उनसे कोई ग्रामवासी उनका परिचय पूछता तो वे

चुप हो जाया करते थे। एक बार भगवान खंडोबा के एक भक्त में उनका भावावेश हो गया। उस समय ग्रामवासियों ने उनसे पूछा कि नीम के पेड़ के नीचे जो युवक बैठा है, वह कौन है? भगवान खंडोबा ने कहा कि "नीम के वृक्ष के नीचे खुदायी करो। उस स्थान पर उस युवक ने 12 वर्ष तक तपस्या की है।" खुदायी से एक चपटा पत्थर निकल आया, जिसे हटाते ही एक गलियारा दिखायी पड़ा, जिसमें चार दीपक जल रहे थे। गलियारे के उस पार एक विशाल कक्ष था, जिसमें लकड़ी आदि से अनेक ढांचे बनाये गये थे।

यह जानकारी प्राप्त होने पर शिरडीवासियों ने बाबा से उनके अतीत तथा पिता आदि के बारे में अनेक प्रश्न किये, परंतु बाबा ने कोई उत्तर नहीं दिया। उन्होंने केवल उन्हें इतना ही बताया कि ग्रामवासियों ने नीम वृक्ष के नीचे जहां खुदायी की थी, वह उनके गुरु का स्थान था। बाबा की सलाह के अनुसार उस गलियारे को वापस बंद कर दिया गया। शिरडी में यह धारणा प्रचलित है कि वह बाबा के गुरु की समाधि है।

सन् 1857 में युवा बाबा शिरडी से लुप्त हो गये तथा अगले तीन वर्ष तक उनका कुछ पता नहीं लगा। सन् 1857 में औरंगाबाद के गांव धुप के मुखिया चांद पाटिल को उनके दर्शन हुए। उस समय वह क्षेत्र निजाम के राज्य का अंग था।

हुआ यह कि चांद पाटिल का घोड़ा खो गया और वह उसकी खोज में निकल पड़ा, तभी आम के एक पेड़ के नीचे उसे एक फकीर दिखायी पड़ा, जिसने सिर पर टोपी और शरीर पर कफनी पहन रखी थी तथा उसकी बगल में एक छोटा-सा डंडा था। फकीर मिट्टी की चिलम सुलगाने की तैयारी कर रहा था। फकीर ने चांद पाटिल को देख लिया, उसे आवाज दी तथा उससे कहा कि "आओ, चिलम पी लो और थोड़ी देर सुस्ता लो।"

चांद पाटिल ने फकीर को बताया कि उसका घोड़ा खो गया और वह उसकी तलाश में निकला है। फकीर ने उससे यों ही कह दिया, "उधर नाले में देखो, कहीं घास चर रहा होगा।"—और सचमुच घोड़ा वहीं था। चांद पाटिल यह देखकर भौंचक्का रह गया। उसे विश्वास हो गया कि यह फकीर अवश्य ही कोई पहुंचा हुआ साधु है। वह फकीर को अपने घर ले गया। कुछ समय बाद चांद पाटिल उस फकीर को लेकर अपने भतीजे की बारात में शामिल हुआ। बारात संयोग से शिरडी ही गयी थी।

इस प्रकार बाबा सन् 1858 में शिरडी में दोबारा प्रकट हो गये तथा उसके बाद से वे वहीं रह गये। वे बारात के साथ धुप नहीं लौटे। वे हमेशा के लिए शिरडी के हो गये। उस समय तक वे साईं बाबा नहीं कहलाते थे। बारात शिरडी पहुंची और खंडोबा मंदिर के पास ठहरी। जिस समय फकीर बैलगाड़ी से उतरने लगे तो शिरड़ी के एक निवासी महालसपति की दृष्टि फकीर पर जा पड़ी और उसके मुंह से अनायास निकला—"या साईं।" उसी क्षण से बाबा का नाम हमेशा के लिए साईं बाबा हो गया।

द्वारिकामाई

शिरडी में दोवारा प्रकट होने पर उन्होंने अपनी पुरानी जगह नीम के वृक्ष के नीचे डेरा नहीं डाला। वे गांव की मस्जिद में रहने लगे। मस्जिद को वावा द्वारिकामाई कहकर पुकारते थे। उस जमाने में शिरडी में कई संतों का निवास था। उनमें से एक देवीदास थे, जो मारुति मंदिर में रहते थे। दूसरे संत जानकीदास थे तथा तीसरे गंगागिर। साईं वावा को इन संतों का सत्संग वहुत प्रिय था तथा उन चारों के वीच गहरी आत्मीयता थी। गांव में उपासनी महाराज नामक एक अन्य सिद्ध महात्मा भी खंडोवा मंदिर में रहते थे। उपासनी वावा साईं वावा को वहुत आदर देते थे। सन् 1912 में उपासनी महाराज के मार्गदर्शन में साईं वावा की पादुकाएं नीम के वृक्ष के नीचे प्रतिष्ठित की गई थीं। उस समय उपासनी महाराज ने संस्कृत के एक पद्य की रचना की भी थी, जो पादुकाओं के समीप एक शिला पर अंकित है।

सदा निंबवृक्षस्य मूलाधिवासात्।
सुधास्रविणंतिक्तमप्यप्रियं तम्।।
तरुं कल्पवृक्षाधिकं सार्थयन्तम्।
नमामीश्वरं सद्गुरुं साईंनाथम्।।

"मैं उन ईश्वर स्वरूप सद्गुरु साईंनाथ के चरणों में नमन करता हूं, जिन्होंने कटु तथा अप्रिय किंतु अमृत की वर्षा करने वाले नीम के वृक्ष के नीचे निरंतर निवास द्वारा उस वृक्ष को कल्पवृक्ष से भी अधिक महत्त्व प्रदान किया है।"

साईंबाबा का व्यक्तित्व

साईं वावा चमत्कारपूर्ण और रहस्यपूर्ण व्यक्तित्व के धनी थे। वे मस्जिद में रहते थे तथा हर वात पर 'अल्लाह मालिक' कहा करते थे, तथापि वे संकीर्ण सांप्रदायिकता से परे थे। वे सच्चे अर्थ में देव-पुरुष थे—न हिन्दू, न मुसलमान। उन्होंने जहां मुसलमानों को मस्जिद से संदल का जुलूस निकालने की अनुमति प्रदान की, वहीं हिन्दुओं का रामनवमी उत्सव पूरी सजधज के साथ मनाया। गोकुल अष्टमी के अवसर पर उन्होंने गोपालकला उत्सव का विधिवत् आयोजन किया तथा ईद के अवसर पर मुसलमानों के साथ मस्जिद में नमाज में भाग लिया।

हिन्दू नाथ योगियों की भांति साईं वावा कनफटे थे। वे मस्जिद में रहते थे, तथापि अपने सामने पवित्र धूनी निरंतर प्रज्वलित रखते थे। उनके शिष्य मस्जिद में शंख वजाकर उनकी आरती उतारते थे, अग्नि में आहुतियां देते थे तथा वावा के चरण धोकर उनके चरणामृत का पान करते थे। वावा के अंतरंग शिरडीवासी शिष्य महालसपति का दावा है कि वावा ने उन्हें वताया था कि वे पथरी के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। उनके माता-पिता ने उनके शैशवकाल में ही उन्हें एक फकीर की झोली में डाल दिया था। पुणे की प्रख्यात थियॉसॉफिस्ट विदुषी श्रीमती काशीवाई काणेटकर ने वताया कि वावा ने उनसे एक वार अपनी ओर संकेत करके कहा था, "यह ब्राह्मण है, शुद्ध ब्राह्मण।"

चुप हो जाया करते थे। एक बार भगवान खंडोबा के एक भक्त में उनका भावावेश हो गया। उस समय ग्रामवासियों ने उनसे पूछा कि नीम के पेड़ के नीचे जो युवक बैठा है, वह कौन है? भगवान खंडोबा ने कहा कि "नीम के वृक्ष के नीचे खुदायी करो। उस स्थान पर उस युवक ने 12 वर्ष तक तपस्या की है।" खुदायी से एक चपटा पत्थर निकल आया, जिसे हटाते ही एक गलियारा दिखायी पड़ा, जिसमें चार दीपक जल रहे थे। गलियारे के उस पार एक विशाल कक्ष था, जिसमें लकड़ी आदि से अनेक ढांचे बनाये गये थे।

यह जानकारी प्राप्त होने पर शिरडीवासियों ने बाबा से उनके अतीत तथा पिता आदि के बारे में अनेक प्रश्न किये, परंतु बाबा ने कोई उत्तर नहीं दिया। उन्होंने केवल उन्हें इतना ही बताया कि ग्रामवासियों ने नीम वृक्ष के नीचे जहां खुदायी की थी, वह उनके गुरु का स्थान था। बाबा की सलाह के अनुसार उस गलियारे को वापस बंद कर दिया गया। शिरडी में यह धारणा प्रचलित है कि वह बाबा के गुरु की समाधि है।

सन् 1857 में युवा बाबा शिरडी से लुप्त हो गये तथा अगले तीन वर्ष तक उनका कुछ पता नहीं लगा। सन् 1857 में औरंगाबाद के गांव धुप के मुखिया चांद पाटिल को उनके दर्शन हुए। उस समय वह क्षेत्र निजाम के राज्य का अंग था।

हुआ यह कि चांद पाटिल का घोड़ा खो गया और वह उसकी खोज में निकल पड़ा, तभी आम के एक पेड़ के नीचे उसे एक फकीर दिखायी पड़ा, जिसने सिर पर टोपी और शरीर पर कफनी पहन रखी थी तथा उसकी बगल में एक छोटा-सा डंडा था। फकीर मिट्टी की चिलम सुलगाने की तैयारी कर रहा था। फकीर ने चांद पाटिल को देख लिया, उसे आवाज दी तथा उससे कहा कि "आओ, चिलम पी लो और थोड़ी देर सुस्ता लो।"

चांद पाटिल ने फकीर को बताया कि उसका घोड़ा खो गया और वह उसकी तलाश में निकला है। फकीर ने उससे यों ही कह दिया, "उधर नाले में देखो, कहीं घास चर रहा होगा।"—और सचमुच घोड़ा वहीं था। चांद पाटिल यह देखकर भौंचक्का रह गया। उसे विश्वास हो गया कि यह फकीर अवश्य ही कोई पहुंचा हुआ साधु है। वह फकीर को अपने घर ले गया। कुछ समय बाद चांद पाटिल उस फकीर को लेकर अपने भतीजे की बारात में शामिल हुआ। बारात संयोग से शिरडी ही गयी थी।

इस प्रकार बाबा सन् 1858 में शिरडी में दोबारा प्रकट हो गये तथा उसके बाद से वे वहीं रह गये। वे बारात के साथ धुप नहीं लौटे। वे हमेशा के लिए शिरडी के हो गये। उस समय तक वे साईं बाबा नहीं कहलाते थे। बारात शिरडी पहुंची और खंडोबा मंदिर के पास ठहरी। जिस समय फकीर बैलगाड़ी से उतरने लगे तो शिरडी के एक निवासी महालसपति की दृष्टि फकीर पर जा पड़ी और उसके मुंह से अनायास निकला—"या साईं।" उसी क्षण से बाबा का नाम हमेशा के लिए साईं बाबा हो गया।

द्वारिकामाई

शिरडी में दोबारा प्रकट होने पर उन्होंने अपनी पुरानी जगह नीम के वृक्ष के नीचे डेरा नहीं डाला। वे गांव की मस्जिद में रहने लगे। मस्जिद को बाबा द्वारिकामाई कहकर पुकारते थे। उस जमाने में शिरडी में कई संतों का निवास था। उनमें से एक देवीदास थे, जो मारुति मंदिर में रहते थे। दूसरे संत जानकीदास थे तथा तीसरे गंगागिर। साईं बाबा को इन संतों का सत्संग बहुत प्रिय था तथा उन चारों के बीच गहरी आत्मीयता थी। गांव में उपासनी महाराज नामक एक अन्य सिद्ध महात्मा भी खंडोबा मंदिर में रहते थे। उपासनी बाबा साईं बाबा को बहुत आदर देते थे। सन् 1912 में उपासनी महाराज के मार्गदर्शन में साईं बाबा की पादुकाएं नीम के वृक्ष के नीचे प्रतिष्ठित की गईं थीं। उस समय उपासनी महाराज ने संस्कृत के एक पद्य की रचना की भी थी, जो पादुकाओं के समीप एक शिला पर अंकित है।

सदा निंबवृक्षस्य मूलाधिवासात्।
सुधास्रविणंतिक्तमप्यप्रियं तम्।।
तरुं कल्पवृक्षाधिकं सार्थयन्तम्।
नमामीश्वरं सद्गुरुं साईंनाथम्।।

"मैं उन ईश्वर स्वरूप सद्गुरु साईंनाथ के चरणों में नमन करता हूं, जिन्होंने कटु तथा अप्रिय किंतु अमृत की वर्षा करने वाले नीम के वृक्ष के नीचे निरंतर निवास द्वारा उस वृक्ष को कल्पवृक्ष से भी अधिक महत्त्व प्रदान किया है।"

साईंबाबा का व्यक्तित्व

साईं बाबा चमत्कारपूर्ण और रहस्यपूर्ण व्यक्तित्व के धनी थे। वे मस्जिद में रहते थे तथा हर बात पर 'अल्लाह मालिक' कहा करते थे, तथापि वे संकीर्ण सांप्रदायिकता से परे थे। वे सच्चे अर्थ में देव-पुरुष थे—न हिन्दू, न मुसलमान। उन्होंने जहां मुसलमानों को मस्जिद से संदल का जुलूस निकालने की अनुमति प्रदान की, वहीं हिन्दुओं का रामनवमी उत्सव पूरी सजधज के साथ मनाया। गोकुल अष्टमी के अवसर पर उन्होंने गोपालकला उत्सव का विधिवत् आयोजन किया तथा ईद के अवसर पर मुसलमानों के साथ मस्जिद में नमाज में भाग लिया।

हिन्दू नाथ योगियों की भांति साईं बाबा कनफटे थे। वे मस्जिद में रहते थे, तथापि अपने सामने पवित्र धूनी निरंतर प्रज्वलित रखते थे। उनके शिष्य मस्जिद में शंख बजाकर उनकी आरती उतारते थे, अग्नि में आहुतियां देते थे तथा बाबा के चरण धोकर उनके चरणामृत का पान करते थे। बाबा के अंतरंग शिरडीवासी शिष्य महालसपति का दावा है कि बाबा ने उन्हें बताया था कि वे पथरी के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। उनके माता-पिता ने उनके शैशवकाल में ही उन्हें एक फकीर की झोली में डाल दिया था। पुणे की प्रख्यात थियॉसॉफिस्ट विदुषी श्रीमती काशीबाई काणेटकर ने बताया कि बाबा ने उनसे एक बार अपनी ओर संकेत करके कहा था, "यह ब्राह्मण है, शुद्ध ब्राह्मण।"

श्रीमती काणेटकर ने वावा से तो कुछ नहीं कहा था परतु उनके मन में यह संघर्ष चल रहा था कि थियॉसॉफिस्ट धारणा के अनुसार वावा को श्वेत लॉज की श्रेणी में रखा जाये अथवा अश्वेत लॉज की श्रेणी में। साईं वावा ने श्रीमती काणेटकर के मन की वात पहचान ली और उनसे कहा कि काले जादू के साथ उनका भी संवंध नहीं है। अपनी ओर इशारा करते हुए उन्होंने कहा, "यह व्राह्मण लाखों लोगों को प्रकाश के मार्ग पर ला सकता है तथा उन्हें उनके लक्ष्य की ओर ले जा सकता है। यह व्राह्मण की मस्जिद है और मैं किसी भी काले-जादूगर की परछायी यहां नहीं पड़ने दूंगा।"

साईं वावा वेदांत-दर्शन के महान पंडित थे तथा वे सदा उसका उपदेश दिया करते थे। वे अल्लाह के भक्त थे और उन्होंने शिरडी के समस्त मंदिरों—शनि, गणपति, शंकर-पार्वती और मारुति मंदिर की मरम्मत करायी तथा उनके प्रवंध में सुधार कराया। वे महान योगी थे तथा स्वयं क्रिया-योग—नौली, धोति आदि का अभ्यास करते थे। वे पंढरपुर के भगवान विठोवा की स्तुति में भजन गाया करते थे।

साईं वावा कहा करते थे कि उनका जन्म हिन्दुओं और मुसलमानों के वीच की खायी पाटने के लिए हुआ। एक वार उन्होंने कहा था कि वे कवीर के अनुयायी हैं। उन्होंने श्रोताओं से कहा, "राम और रहीम दोनों एक ही हैं। उनके वीच कुछ भी अंतर नहीं है। ऐसी स्थिति में उनके अनुयायियों के वीच संघर्ष का कोई कारण ही नहीं रह जाता। अवोध लोगो! वालको! तुम मिलकर दोनों संप्रदायों को एक-दूसरे के समीप लाओ। सज्जनतापूर्ण आचरण करोगे तो एकता का लक्ष्य सिद्ध कर पाओगे। झगड़ा और वहस करना अच्छा नहीं है। अतः वहस मत करो। ईश्वर तुम्हारी रक्षा करेगा। योग, आत्म-वलिदान, तपस्या तथा ज्ञान के द्वारा ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है।

वावा जीवनमुक्त पुरुष थे। वे अविवाहित थे तथा उन्होंने औपचारिक रूप से जगत का त्याग भी नहीं किया था। वे एक नैष्ठिक संन्यासी, संत, दृष्टा और फकीर थे। वे शिरडी में घूम-घूमकर भिक्षाटन किया करते थे। वे अपने एक हाथ में टिन का एक डिव्वा लिए रहते थे तथा दूसरे हाथ में झोली। वे गीले पदार्थ टिन के डिव्वे में लेते और सूखे पदार्थ झोली में। भिक्षाटन के पश्चात् वे मस्जिद में लौटकर भोजन के सूखे गीले सभी पदार्थ मिट्टी की कुंडी में डाल देते। वे जव भोजन करने वैठते तो कुत्ते, विल्लियां और कौवे भी उनके साथ शामिल हो जाते तथा कुंडी में से खाने लगते थे। मस्जिद में झाड़ू लगाने वाली महिला भी वेझिझक कुंडी में से भोजन ले लेती थी। आधुनिकतावासियों की दृष्टि से इसे पागलपन ही माना जायेगा, परंतु वास्तव में साईं वावा पागल नहीं अवधूत थे। वे सिद्ध पुरुष थे। उनकी दृष्टि में मनुष्य और मनुष्य तथा मनुष्य और अन्य जीवों के वीच किसी प्रकार का भेद न था। उन्होंने जिह्वा के स्वाद पर विजय प्राप्त कर ली थी तथा वे अपनी वस्तुओं को उदारतापूर्वक दूसरों में वांट देते थे।

बीसवीं शताब्दी के अग्रणी गुरु एवं रहस्यवाणी संत शिरडी के साईं बाबा, जिनकी उपासना एक त्राता के रूप में की जाती है।

एक समय वह था जब साईं बाबा शिरडी के आसपास के जंगल में घूमते रहते थे। उस समय एक श्रद्धालु देवी बायजा बाई बाबा के लिए भोजन तैयार करतीं और उसे एक टोकरी में भरकर टोकरी को सिर पर धरे-धरे बाबा की खोज में जंगल में भटकती रहती थीं। उन्हें खोज लेने पर वे बाबा के चरणों में गिर पड़तीं और उन्हें जबरदस्ती भोजन करातीं। बाबा ने शिरडी आने के बाद जीवन भर उत्तर में निमगांव और दक्षिण में राहाटा के परे पांव नहीं निकाला। शिरडी आने के बाद जीवन भर वे उसी सीमा-क्षेत्र में संन्यास की अवस्था में रहे। न उन्होंने कभी रेलगाड़ी देखी, न वे उस पर चढ़े।

सीमोल्लंघन

सन् 1916 की विजयदशमी को बाबा आवेश में आ गये। शाम के समय जब उनके भक्त सीमोल्लंघन समारोह से लौटकर उनके पास इकट्ठा हुए तो उन्होंने कोपीन समेत अपने सभी कपड़े उतार डाले और उन सब को फाड़कर धूनी में होम कर दिया। धूनी में से उठती लपटों में साईं बाबा दैदीप्थमान हो उठे। वे अपने भक्तों पर बरस पड़े, "तुम लोग अब अपनी आंखों से देख लो और स्वयं फैसला कर लो कि मैं हिन्दू हूं या मुसलमान।" उनके भक्त उनके इस आवेशपूर्ण कार्य से सन्न रह गये और डर गये। उनमें से एक भोगोजी शिन्दे—कोढ़ी भक्त—ने हिम्मत करके बाबा की कमर में कोपीन बांध दी और बाबा को प्रेमपूर्वक झिड़कते हुए कहा, "बाबा! यह सब क्या है? आज सीमोल्लंघन दिवस है।" बाबा ने अपना सटका (छोटा सा डंडा) हाथ में उठाया और उसे जमीन पर पटकते हुए कहा, "आज मेरा भी सीमोल्लंघन (सीमा लांघने का) दिवस है।"

यह इस बात का संकेत था कि बाबा विजयदशमी के दिन शरीर छोड़ सकते हैं। उनके भक्त यह देखकर चकित रह गये कि वे मस्जिद में रहते थे और ईश्वर को अल्लाह कहकर पुकारते थे किंतु उनका खतना नहीं हुआ था।

इस घटना के दो वर्ष बाद 28 सितंबर, 1918 को बाबा को ज्वर हुआ, जो दो-तीन दिन रहकर उतर गया। इसके सत्रहवें दिन 15 अक्तूबर, 1918, मंगलवार को दोपहर में लगभग अढ़ाई बजे बाबा ने अपना नश्वर शरीर छोड़ दिया। उस दिन विजयदशमी का पर्व था। उन्होंने इस जगत की सीमा लांघने के लिए वही दिन चुना।

शरीर त्यागने से कुछ दिन पहले बाबा ने अपने भक्त श्री वाजे के मुख से रामविजय का पाठ दो बार सुना—पहले ग्यारह दिन और दूसरी बार तीन दिन। देह छोड़ने से पहले ही उन्होंने अपने समाधि-स्थल के बारे में संकेत कर दिया था। उन्होंने लक्ष्मीबाई शिन्दे से कहा था कि "मुझे मस्जिद में अच्छा नहीं लग रहा है। मुझे बूटी के वाड़ा में ले जाना।" बूटी बाबा के परम भक्त थे और उन्होंने वह वाड़ा (घर) अपने रहने के लिए बनाया था। वे नागपुर के रहने वाले थे और बाबा की समीपता प्राप्त करने के लिए शिरडी में वाड़ा (घर) बनाकर रहने लगे थे।

बाबा के मुस्लिम भक्तों का यह आग्रह बहुत स्वाभाविक था कि उनका अंतिम संस्कार मुस्लिम परंपरा के अनुसार किया जाये, परंतु बाबा के अन्य शिष्य बाबा की अंतिम आज्ञा का पालन करने का आग्रह कर रहे थे। वे चाहते थे कि उनको बूटी के घर में समाधि दी जाये। 36 घंटे तक इस बारे में कोई फैसला नहीं हो सका, किंतु अंत में बाबा के सभी हिन्दू और मुसलमान भक्तों ने सर्वसम्मति से बाबा के आदेश अनुसार उन्हें बूटी-वाड़ा में समाधि देने का निश्चय कर लिया। उस समय तक उपासनी महाराज भी शिरडी पहुंच गये थे, उनके निर्देशन में साईं बाबा को पूरे धार्मिक विधि-विधान के साथ महासमाधि दी गयी।

शिरडी में बाबा की समाधि प्रतिदिन दूर-दूर से आने वाले साईं भक्तों के लिए एक पवित्र तीर्थ बन गयी है। बाबा ने अपने भक्तों को वचन दिया था कि शरीर छोड़ने के बाद भी वे उनका मार्गदर्शन और उनके दु:खों का निवारण करते रहेंगे। उन्होंने कहा था, "मुझ पर विश्वास करो, मैं भले ही शरीर छोड़ दूं, मेरी समाधि में मेरी अस्थियां मेरे प्रति पूरी तरह समर्पित लोगों के साथ बात करेंगी, उनके लिए हलचल करेंगी तथा उनके साथ संपर्क बनाये रखेंगी। यह सोचकर परेशान मत होना कि मैं तुमसे अलग हो जाऊंगा। तुम मेरी अस्थियों को तुम्हारे कल्याण के निमित्त बोलते और चर्चा करते हुए सुनोगे, लेकिन मुझे हमेशा याद रखना, मुझ पर अपने पूरे हृदय और आत्मा से विश्वास रखना, तुम्हें तभी पूरा लाभ प्राप्त होगा।"

बाबा अपने भक्तों से सदा कहा करते थे कि वे शरीर नहीं हैं, शरीर तो साधनमात्र है। वास्तव में बाबा आत्मा हैं—परिपूर्ण, अमर और शाश्वत आत्मा।

उडी की महिमा

साईं बाबा के भक्त उनके दर्शन करने के बाद जब शिरडी से जाने लगते तो बाबा उन्हें अपनी धूनी में से राख बांटा करते थे, जिसे वे उडी कहते थे। राख प्रतीक स्वरूप थी, जिसके द्वारा बाबा अपने भक्तों को आध्यात्मिकता का यह मूल पाठ पढ़ाते थे कि समूचा भौतिक विश्व ऐसा क्षणभंगुर है, जैसी कि उडी। वे ब्रह्म अर्थात् परम सत्य की उपासना पर बल दिया करते थे। दूसरी ओर भक्तों की आस्था और बाबा की चमत्कारी तथा रहस्यमय शक्ति के द्वारा वह उडी (भस्मी) अनेक शारीरिक और मानसिक रोगियों को स्वास्थ्य भी प्रदान करती थी, लेकिन बाबा इस ओर से प्राय: उदासीन रहते थे। वे चाहते थे कि उनके भक्त शाश्वत ब्रह्म और क्षणभंगुर जगत का अंतर समझें।

मैं कौन हूं?

एक बार बाबा ने अपने एक भक्त से कहा था, "यह मेरी विशेषता है कि जो व्यक्ति मेरे प्रति पूरी तरह आत्मसमर्पण कर देता है तथा पूरी निष्ठा से मेरी पूजा, मेरा स्मरण और निरंतर मेरा ध्यान करता है, मैं उसे सांसारिक बंधनों से मुक्त कर देता हूं। मैं अपने भक्तों को मौत के पंजे से निकाल लाऊंगा। मेरे भक्तों का घमंड और अहं समाप्त हो जायेगा और वे सर्वोच्च चेतना के साथ एकाकार हो जायेंगे। 'साईं साईं' अर्थात् मेरे नाम के जप मात्र से वाणी और श्रवण के दोष नष्ट हो जायेंगे।"

यहां यह प्रश्न उठता है कि बाबा अपने आपको क्या मानते थे? उनके ही शब्दों में, "मैं समस्त प्राणियों के अंतर्मन का स्वामी हूं और उनके हृदयों में विराजमान हूं। मैं समस्त चर-अचर जीवों को ढांपे हुए हूं। मैं विश्व के नाटक का नियंता हूं। मैं समस्त प्राणियों की मां, तीनों गुणों (सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण) का समन्वय, समस्त इन्द्रियों का संचालक, सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और नाशकर्ता हूं। माया उस पर ही चोट करेगी, जो मुझे भुला देगा। समस्त कीड़े, चींटियां, दृश्य-अदृश्य और चर-अचर सृष्टि मेरा ही रूप है, मेरी ही काया है।" इससे स्पष्ट हो जाता है कि बाबा मिथ्या अहंवादी नहीं हैं। वे सिद्ध पुरुष तथा आत्मा के सच्चे प्रतिनिधि थे।

बाबा महान योगी थे। वे कहते थे, "आत्म-साक्षात्कार के लिए ध्यान अनिवार्य है। उस परब्रह्म का ध्यान करो, जो समस्त प्राणियों में निवास करता है। हमेशा मेरे निराकार स्वरूप का ध्यान करो, जो साक्षात ज्ञान, चेतना और शाश्वत आनंद है। यह ध्याता, ध्यान और ध्येय का भेद समाप्त कर देगा और ध्याता (ध्यान करने वाला साधक) शाश्वत चेतना के साथ एकाकार होकर ब्रह्म में विलीन हो जायेगा।" इससे स्पष्ट है कि साईं बाबा ब्रह्मविद्या के परम गुरु थे। वे उच्च कोटि के ब्रह्मज्ञानी थे।

■■

श्री मेहेर बाबा

"मैं सनातन पुरुष हूं। मैं जब यह कहता हूं कि मैं भगवान हूं, तब इसका यह अर्थ नहीं है कि मैंने इस बारे में सोचकर तय किया है कि मैं भगवान हूं। मुझे ज्ञात ही है कि मैं भगवान हूं। कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि किसी व्यक्ति के लिए यह कहना कि मैं ईश्वर हूं, ईश्वर का अपमान है, परंतु सत्य यह है कि यदि मैं यह न कहूं कि मैं भगवान हूं तो यह ईश्वर का अपमान होगा।"

"मैं मनुष्यों के बीच दिव्य पुरुष के रूप में उपस्थित हूं, मैं उन्हें ईश्वर के प्रति प्रेम प्रदान करने तथा ईश्वर के अस्तित्व के प्रति जागृत करने के लिए अवतरित हुआ हूं। एक ईश्वर ही सत्य है तथा अंन्य सभी कुछ भ्रांति है—स्वप्न है।"

अपने आपको दिव्य पुरुष और भगवान घोषित करने वाले मेहेर बाबा को उनके अनुयायी अवतार मेहेर बाबा कहते हैं। मेहेर बाबा अपने अनुयायियों को अपना शिष्य अथवा भक्त कहने की बजाय अपना प्रेमी मानते थे। मेहेर बाबा यह दावा करते थे कि जगत की परम-सत्ता ने उनके भीतर मूर्त रूप ले लिया है। उन्होंने घोषणा की कि वे किसी भी धर्म से जुड़े हुए नहीं हैं तथा प्रत्येक धर्म उन से जुड़ा हुआ है। उन्होंने कहा, "मेरा व्यक्तिगत धर्म यही है कि मैं सनातन अनंत सत्ता हूं और मैं सब लोगों को एक ही धर्म की शिक्षा देता हूं कि ईश्वर के प्रति प्रेम करो, क्योंकि यही सब धर्मों का सार है।"

मेहेर बाबा का जन्म 25 फरवरी, 1894 को हुआ था, वे पुणे के निवासी दंपत्ति श्री शेरयार मुन्देर ईरानी और श्रीमती शीरीन बानो शेरयार ईरानी के 8 बच्चों में दूसरे थे। बालक का नाम मेरवान शेरयार ईरानी रखा गया था। सेंट विन्सेंट हाई स्कूल, पुणे में प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा पूरी करने के बाद उन्हें 17 वर्ष की अवस्था में उच्च शिक्षा के लिए पुणे के डेकेन कॉलेज में भर्ती कराया गया। उनके पिता सूफी संप्रदाय के थे।

मेरवान को क्रिकेट और हॉकी के खेलों का बहुत शौक था और वह अपनी पढ़ाई मनोयोग से करता था। देखने-भालने में सुंदर और बुद्धिमान मेरवान अपने सहपाठियों और शिक्षकों का स्नेहभाजन बन गया था। साहित्य में उसकी गहरी रुचि थी, विशेषतः काव्य में। कवियों में उसे महान फारसी रहस्यवादी कवि हफीज की रचनाएं बहुत प्रिय थीं। उन्होंने मेरवान को बहुत प्रेरणा दी और मेरवान स्वयं मराठी, फारसी और अंग्रेजी में काव्य रचना करने लगा। उसकी कविताएं समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं में स्वीकृत और प्रकाशित होने लगीं।

मेरवान संगीत प्रेमी भी था और उसे मधुर कंठ प्राप्त हुआ था। दार्शनिक रहस्यवाद में उसकी रुचि तेजी से वढ़ती जा रही थी और उसने रहस्यवादी कहानियां लिखनी शुरू कर दी थीं। मेरवान वहुत मिलनसार था और उसकी दृष्टि सार्वभौमिक थी। डेकेन कॉलेज में उसने कॉस्मोपॉलिटन क्लव की स्थापना की, जिसमें प्रवेश सव के लिए खुला था, भले ही वे किसी भी जाति अथवा धर्म के हों।

आत्म-साक्षात्कार

मई, 1913 में जव उसकी नियति उसके सामने आकर खड़ी हुई, तव मेरवान की आयु केवल 19 वर्ष थी। एक दिन मेरवान अपनी वाईसिकिल पर डेकेन कॉलेज से लौट रहा था। जैसे ही वह रास्ते में पड़ने वाले एक विशाल छायादार नीम के पास पहुंचा कि उस वृक्ष के नीचे एकत्र महिलाओं के झुंड में से एक वृद्धा उठी और तेजी से मेरवान की ओर लपकी। मेरवान ने उस महिला को अपनी ओर आते देख लिया तथा उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए वह वाईसिकिल से उतर गया। अव दोनों एक दूसरे के सामने थे और एक-दूसरे की आंखों में झांक रहे थे। यह वृद्धा और कोई नहीं, महान रहस्यवादी और पूर्ण-गुरु हजरत वावाजान थी। वावाजान ने मेरवान को अपनी भुजाओं में भर लिया और दोनों आंखों के वीच उसके मस्तक को चूमा। दोनों ने एक दूसरे से कहा कुछ भी नहीं। इसके वाद वावाजान अपने स्थान पर लौट आयी और मेरवान अपने घर चला गया।

सामान्य दृष्टि से यह एक साधारण-सी घटना थी, परंतु वास्तव में ऐसा नहीं था। वावाजान के उस चुंवन ने मेरवान का चेतना के स्तर पर वुरी तरह रूपांतरण कर डाला और मेरवान का हृदय आनंद से भर उठा। यह कोई साधारण आनंद नहीं था, पराजागतिक और दिव्य आनंद था।

जनवरी, 1914 की एक रात वावाजान मेरवान से फिर मिलीं और उन्होंने उसे आत्म-साक्षात्कार करा दिया। वावाजान की कृपा से मेरवान की चेतना परमेश्वर की शुद्ध और सर्वोच्च चेतना के साथ एकाकार हो गयी और वह तीन दिन तक जगत की ओर से अचेत वना रहा। चौथे दिन उसकी चेतना आंशिक रूप में लौटी। मेरवान के माता-पिता को कुछ नहीं सूझ रहा था कि वे अपने वच्चे को पूरी तरह होश में लाने के लिए क्या करें किंतु हजरत वावाजान प्रसन्न थीं और उन्होंने घोषणा कर दी कि "मेरा यह वच्चा संसार में महान हलचल पैदा करेगा और मानव जाति का इससे वहुत हित होगा।" एक अन्य अवसर पर वावाजान ने कहा कि 'मेरवान अपनी दिव्य शक्ति से समूचे विश्व को जगा देगा।"

मेरवान के माता-पिता ने मेरवान का हर प्रकार से इलाज कराने की कोशिश की, लेकिन कोई भी इलाज उसकी चेतना पूरी तरह लौटाने में सफल नहीं हुआ। कुछ समय वाद ही मेरवान के मन में शिरडी के श्री साईं वावा के दर्शनों की तीव्र लालसा उत्पन्न हो गयी। सन् 1915 में वह शिरडी गया और उसने श्री साईं वावा के दर्शन किये। साईं वावा शौच आदि से निवटकर मस्जिद की ओर लौट रहे थे। साईं वावा की दृष्टि जैसे ही मेरवान पर पड़ी, वे कह उठे, "हे परवरदिगार।"

परवरदिगार का अर्थ है—ईश्वर—पालन और संरक्षण करने वाली सत्ता। मेरवान ने साईं बाबा के सामने साष्टांग प्रणाम किया। उन्होंने मेरवान को एक अन्य गुरु उपासनी महाराज के पास भेज दिया।

मेरवान जब उपासनी महाराज के पास पहुंचे, उस समय उपासनी महाराज निपट नंगे बैठे थे। मेरवान को देखते ही उपासनी महाराज ने अपने हाथ में एक पत्थर उठाया और मेरवान की ओर फेंका। वह पत्थर उनके माथे पर ठीक उस जगह लगा, जहां हजरत बाबाजान ने उन्हें चूमा था। पत्थर लगते ही मेरवान की सामान्य चेतना लौटने लगी और धीरे-धीरे वह पूरी तरह लौट आयी। एक दिन उपासनी महाराज ने मेरवान से कहा कि "तू अवतार है।" उन्होंने अपने शिष्यों के सामने यह घोषणा भी की कि "मेरे पास जो कुछ भी आध्यात्मिक संपदा थी, वह सब की सब मैंने मेरवान को दे डाली है और इसके बाद से तुम सब को मेरवान की आज्ञा का पालन करना चाहिए।"

प्रेम का देवता

सन् 1951 के अंत में मेरवान को ऐसा अनुभव हुआ कि वह भगवान अथवा अवतार है। यह वही समय था, जब उपासनी महाराज ने मेरवान को कलियुग का सद्गुरु घोषित किया था। अब वे मेरवान से मेहेर बाबा अर्थात् प्रेम और करुणा के पिता बन गये। सन् 1922 में उन्होंने अपने आध्यात्मिक मिशन की नींव डाली, जिसके बारे में कहते हैं, "मैं शिक्षा देने नहीं, जगाने आया हूं, ...मैं सब को एक ही दीक्षा देता हूं, वह धर्म है—ईश्वर प्रेम। हम सब के भीतर एक ही परमात्मा का निवास है और हम सब प्रेम द्वारा उस तक पहुंच सकते हैं। ....मैं अवतार लेने के बाद बार-बार एक ही बात दोहराये जा रहा हूं कि "ईश्वर से प्रेम करो।"

"मैं मनुष्यों के बीच दिव्य पुरुष के रूप में उपस्थित हूं, मैं उन्हें ईश्वर के प्रति प्रेम प्रदान करने तथा ईश्वर के अस्तित्व के प्रति जागृत करने के लिए अवतरित हुआ हूं।"—मेहेर बाबा

सन् 1924 में मेहेर बाबा ने अहमदनगर रेलवे स्टेशन से कोई छः मील की दूरी पर अरण-गांव में अपना मुख्यालय स्थापित किया, जो मेहेराबाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। मेहेराबाद में उन्होंने कई संस्थाएं खड़ी कीं। 10 जून, 1925 को उन्होंने पूर्ण मौन धारण कर लिया, जिसे उन्होंने जीवन में कभी नहीं तोड़ा—31 जनवरी, 1969 को शरीर छोड़ते समय भी नहीं। मौन धारण करने के एक वर्ष तक वे अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों को लिखते चले गये और जनवरी, 1927 तक वे अपने प्रेमियों के नाम अपने संदेश लिखकर देते रहे, परंतु उसके बाद से उन्होंने लिखना भी बंद कर दिया।

जनवरी, 1927 से 7 अक्तूबर, 1954 तक मेहेर बाबा अंग्रेजी वर्णमाला की एक तख्ती पर अपनी उंगली से संकेत करके वार्तालाप करते रहे। उसके बाद उन्होंने वह तख्ती भी फेंक दी। अब उनके पास संवाद का एक ही माध्यम बचा—मुख मुद्राएं और हाथों के संकेत, जिनका अर्थ उनके निकट अनुयायी उनके श्रोताओं को समझा देते थे। वे कहते थे कि मौन के द्वारा उन्होंने संचार के आंतरिक माध्यमों पर भी अधिकार प्राप्त कर लिया है। वे कहते हैं, "ईश्वर सनातन काल से मौन रहकर ही कार्य करता चला आ रहा है। न उसे कोई देख पाता है, न सुन पाता है, फिर भी जिन लोगों ने उसके अनंत मौन की अनुभूति ली है, उन्होंने उसको स्वीकार किया है।"

मेहेर बाबा ने भारत और विदेशों में बहुत व्यापक यात्राएं कीं। वे पहली बार सन् 1931 में इंग्लैंड गये और सन् 1932 में दूसरी बार। उसके बाद तो सन् 1958 तक उन्होंने कई बार विदेश यात्राएं कीं—छः बार युरोप और अमरीका की यात्रा तथा 10 बार अन्य देशों की यात्रा। इंग्लैंड, अमरीका, आस्ट्रेलिया, जर्मनी, स्विट्जरलैंड, मैक्सिको, लेबनान, न्यूजीलैंड, यूनान, मिस्र, जापान, मलाया, फ्रांस, ईरान और भारत में ऐसे असंख्य लोग हैं, जो मेहेर बाबा को कलियुग का अवतार मानते रहे हैं।

मेहेर बाबा आजीवन ब्रह्मचारी रहे। वे समय-समय पर एकांतवास और लंबे तथा कष्टदायी उपवास किया करते थे। उनकी वेश-भूषा साधारण मनुष्यों जैसी थी और वे आम लोगों से खुलकर मिलते थे। उन्होंने कभी यह दावा नहीं किया कि वे गुरु या शिक्षक हैं। वे अपने पास आने वाले लोगों के धार्मिक विश्वासों में हस्तक्षेप नहीं करते थे, न ही किसी को दीक्षा देते थे। वे कहा करते थे, "मैं तुम्हें यह सिखाऊंगा कि दुनिया में सामान्य ढंग से काम करते हुए भी मुझ अनंत भगवान के साथ तुम किस प्रकार संवाद बनाये रख सकते हो।"

मैं कौन हूं?

मेहेर बाबा के मन में पक्का विश्वास था कि वे भगवान हैं। उन्होंने घोषणा की, "मैं साकार भगवान हूं, तुम में से जिन लोगों को मेरी प्रेममय उपस्थिति में रहने का अवसर मिला है, वे भाग्यवान हैं। मैं राम था, मैं ही कृष्ण था, मैं यह था, मैं

परवरदिगार का अर्थ है—ईश्वर—पालन और संरक्षण करने वाली सत्ता। मेरवान ने साईं बाबा के सामने साष्टांग प्रणाम किया। उन्होंने मेरवान को एक अन्य गुरु उपासनी महाराज के पास भेज दिया।

मेरवान जब उपासनी महाराज के पास पहुंचे, उस समय उपासनी महाराज निपट नंगे बैठे थे। मेरवान को देखते ही उपासनी महाराज ने अपने हाथ में एक पत्थर उठाया और मेरवान की ओर फेंका। वह पत्थर उनके माथे पर ठीक उस जगह लगा, जहां हजरत बाबाजान ने उन्हें चूमा था। पत्थर लगते ही मेरवान की सामान्य चेतना लौटने लगी और धीरे-धीरे वह पूरी तरह लौट आयी। एक दिन उपासनी महाराज ने मेरवान से कहा कि "तू अवतार है।" उन्होंने अपने शिष्यों के सामने यह घोषणा भी की कि "मेरे पास जो कुछ भी आध्यात्मिक संपदा थी, वह सब की सब मैंने मेरवान को दे डाली है और इसके बाद से तुम सब को मेरवान की आज्ञा का पालन करना चाहिए।"

प्रेम का देवता

सन् 1951 के अंत में मेरवान को ऐसा अनुभव हुआ कि वह भगवान अथवा अवतार है। यह वही समय था, जब उपासनी महाराज ने मेरवान को कलियुग का सद्गुरु घोषित किया था। अब वे मेरवान से मेहेर बाबा अर्थात् प्रेम और करुणा के पिता बन गये। सन् 1922 में उन्होंने अपने आध्यात्मिक मिशन की नींव डाली, जिसके बारे में कहते हैं, "मैं शिक्षा देने नहीं, जगाने आया हूं, ...मैं सब को एक ही दीक्षा देता हूं, वह धर्म है—ईश्वर प्रेम। हम सब के भीतर एक ही परमात्मा का निवास है और हम सब प्रेम द्वारा उस तक पहुंच सकते हैं। ....मैं अवतार लेने के बाद बार-बार एक ही बात दोहराये जा रहा हूं कि "ईश्वर से प्रेम करो।"

"मैं मनुष्यों के बीच दिव्य पुरुष के रूप में उपस्थित हूं, मैं उन्हें ईश्वर के प्रति प्रेम प्रदान करने तथा ईश्वर के अस्तित्व के प्रति जागृत करने के लिए अवतरित हुआ हूं।"—मेहेर बाबा

सन् 1924 में मेहेर बाबा ने अहमदनगर रेलवे स्टेशन से कोई छः मील की
ूरी पर अरण-गांव में अपना मुख्यालय स्थापित किया, जो मेहेराबाद के नाम से
सिद्ध हुआ। मेहेराबाद में उन्होंने कई संस्थाएं खड़ी कीं। 10 जून, 1925 को
उन्होंने पूर्ण मौन धारण कर लिया, जिसे उन्होंने जीवन में कभी नहीं तोड़ा—31
नवरी, 1969 को शरीर छोड़ते समय भी नहीं। मौन धारण करने के एक वर्ष तक
अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों को लिखते चले गये और जनवरी, 1927 तक वे
पने प्रेमियों के नाम अपने संदेश लिखकर देते रहे, परंतु उसके वाद से उन्होंने
लखना भी बंद कर दिया।

जनवरी, 1927 से 7 अक्तूबर, 1954 तक मेहेर वावा अंग्रेजी वर्णमाला की
ूक तख्ती पर अपनी उंगली से संकेत करके वार्तालाप करते रहे। उसके वाद
उन्होंने वह तख्ती भी फेंक दी। अव उनके पास संवाद का एक ही माध्यम
चा—मुख मुद्राएं और हाथों के संकेत, जिनका अर्थ उनके निकट अनुयायी उनके
ोताओं को समझा देते थे। वे कहते थे कि मौन के द्वारा उन्होंने संचार के आंतरिक
ाध्यमों पर भी अधिकार प्राप्त कर लिया है। वे कहते हैं, "ईश्वर सनातन काल से
ौन रहकर ही कार्य करता चला आ रहा है। न उसे कोई देख पाता है, न सुन पाता
, फिर भी जिन लोगों ने उसके अनंत मौन की अनुभूति ली है, उन्होंने उसको
वीकार किया है।"

मेहेर वावा ने भारत और विदेशों में बहुत व्यापक यात्राएं कीं। वे पहली वार
न् 1931 में इंग्लैंड गये और सन् 1932 में दूसरी वार। उसके वाद तो सन् 1958
क उन्होंने कई वार विदेश यात्राएं कीं—छः वार युरोप और अमरीका की यात्रा
था 10 वार अन्य देशों की यात्रा। इंग्लैंड, अमरीका, आस्ट्रेलिया, जर्मनी,
स्वट्जरलैंड, मैक्सिको, लेवनान, न्यूजीलैंड, यूनान, मिस्र, जापान, मलाया, फ्रांस,
ईरान और भारत में ऐसे असंख्य लोग हैं, जो मेहेर वावा को कलियुग का अवतार
ानते रहे हैं।

मेहेर वावा आजीवन ब्रह्मचारी रहे। वे समय-समय पर एकांतवास और
ंवे तथा कष्टदायी उपवास किया करते थे। उनकी वेश-भूषा साधारण मनुष्यों
ैसी थी और वे आम लोगों से खुलकर मिलते थे। उन्होंने कभी यह दावा नहीं
कया कि वे गुरु या शिक्षक हैं। वे अपने पास आने वाले लोगों के धार्मिक विश्वासों
ं हस्तक्षेप नहीं करते थे, न ही किसी को दीक्षा देते थे। वे कहा करते थे, "मैं तुम्हें
ह सिखाऊंगा कि दुनिया में सामान्य ढंग से काम करते हुए भी मुझ अनंत भगवान
के साथ तुम किस प्रकार संवाद वनाये रख सकते हो।"

ैं कौन हूं?

मेहेर वावा के मन में पक्का विश्वास था कि वे भगवान हैं। उन्होंने घोषणा
की, "मैं साकार भगवान हूं, तुम में से जिन लोगों को मेरी प्रेममय उपस्थिति में
रहने का अवसर मिला है, वे भाग्यवान हैं। मैं राम था, मैं ही कृष्ण था, मैं यह था, मैं

वह था। अब मैं मेहेर बाबा हूं। मैं वही सनातन सत्य हूं, जिसकी सदा से पूजा होत
रही है और उपेक्षा भी, जिसे सदा याद किया जाता है और भुला भी दिया जाता है
....मुझ पर विश्वास करो, मैं ही एकमात्र सनातन सत्य हूं।" वे अपने प्रेमियों
कहा करते थे कि भौतिक शरीर देखकर भ्रम में मत पड़ो। उन्होंने अपने परिपू
परमात्मस्वरूप को पहचान लिया था, इसी कारण वे घोषणा कर सके, "मैं इ
शरीर में सीमित नहीं हूं, इस शरीर को तो मैं तुम्हारे सामने प्रकट होने तथा तुम्हा
साथ संवाद करने के लिए वस्त्र की भांति धारण करता हूं। तुम जिस शरीर को दे
रहे हो, मैं वह नहीं हूं, यह तो एक आवरण है, जिसे मैं तुमसे मिलने के लिए आ
समय पहन लेता हूं।"

1 नवंबर, 1953 को उन्होंने देहरादून में एक दिव्य संदेश दिया, जिस
उन्होंने कहा, "मानव जाति को आज आध्यात्मिक ज्ञान की आवश्यकता है औ
इसके लिए उसे अनिवार्यतः पूर्ण गुरुओं तथा अवतारों की ओर मुड़ना होगा
....कष्टों का कारण अज्ञान अथवा मिथ्या जगत के प्रति आसक्ति है। अधिकां
लोग मिथ्या जगत के साथ इस प्रकार खेलते हैं, जिस प्रकार बच्चे खिलौने से खेल
हैं। यदि तुम इस जगत से क्षणभंगुर पदार्थों में उलझ जाओ और मिथ्या मूल्यों
चिपके रहो, तब दुःख अनिवार्य है।"

"युग-युग से आत्मा अपनी ही परछाइयों को देखती आ रही है और रूप
इस मिथ्या जगत में उलझती जा रही है। ....जब यह आत्मा अपने भीतर की अ
मुड़ जाये और उसमें आत्म-ज्ञान प्राप्त करने की अभीप्सा उत्पन्न हो जाये, त
यह मानना होगा कि उसे आध्यात्मिक दृष्टि प्राप्त हो गयी है।"

मेहेर बाबा को चमत्कारों में तनिक विश्वास न था। वे कहते हैं, "तुम्हें सच्च
मोक्ष की प्राप्ति चमत्कारों के द्वारा नहीं, सही समझ के द्वारा होगी।"

मेहेर बाबा अपने पास आने वाले लोगों से दो टूक बात करते थे। उन्होंने
स्पष्ट शब्दों में कहा, "न तो मैं महात्मा हूं, न महापुरुष हूं, न साधु, न संत, न योगी,
न वली। जो लोग मेरे पास यह इच्छा लेकर आते हैं कि उन्हें मेरे आशीर्वाद से धन
प्राप्त हो जायेगा या उनकी दौलत उनके पास बनी रहेगी, उन्हें दुःखों और कष्टों से
छुटकारा मिल जायेगा अथवा उनकी विभिन्न इच्छाएं पूर्ण और संतुष्ट हो जायेंगी,
मैं उनसे एक बार फिर कहना चाहता हूं कि मेरे द्वारा इन इच्छाओं की पूर्ति के
मामले में आपको घोर निराशा ही मिलेगी।"

मेहेर बाबा इस बात पर बल देते थे कि उनके प्रेमी अपना सर्वस्व, तन, मन
और धन चुपचाप और बिना प्रदर्शन किये ही उन्हें समर्पित कर दें। वे संपूर्ण
समर्पण की मांग करते थे और कहा करते थे कि कोरे बुद्धिवादी उन्हें कभी नहीं
समझ सकते। वे कहते हैं, "जो लोग सिद्ध गुरु की संगति खोजते हैं और पूर्ण
समर्पण तथा आस्थापूर्वक उसके आदेशों का पालन करते हैं, वे उन लोगों की तरह
हैं, जो किसी ऐसी विशेष गाड़ी में बैठे हों, जो उन्हें कम से कम समय में उनके
गंतव्य तक पहुंचा सके और बीच में कहीं भी न रुके।"

जगत में रहते रहो!

मेहर बाबा कहते हैं कि ईश्वर को प्रेम करने के दो मार्ग हैं—त्याग, पूर्ण त्याग का मार्ग और दूसरा इस जगत में रहते हुए ईश्वर को प्यार करने का मार्ग। उनकी दृष्टि में, "दूसरा मार्ग वास्तव में महान है। इस मार्ग पर चलते समय आपको कुछ भी नहीं छोड़ना पड़ेगा। आप गृहस्थ में रहें, जगत में रहें, अपना कामकाज और व्यापार-धंधा करें, नौकरी, सिनेमाघरों और पार्टियों में जायें, सब कुछ करते रहें परंतु एक काम हमेशा करें—दूसरों को सुख पहुंचाने के बारे में हमेशा चिंतन करें, हमेशा कोशिश करें, अपने सुख का बलिदान करके भी, ...तब मैं तुम्हारे हृदय में जीवन का बीज बो दूंगा।" वे कहा करते थे कि "जीवन एक बहुत बड़ा मजाक है ....आमतौर पर लोग जीवन को गंभीरता से लेते हैं और ईश्वर को सरसरी तौर पर। होना यह चाहिए कि हम ईश्वर को गंभीरता से लें और जीवन को हलकेपन से। ....शाश्वत सत्य के प्रति आस्था के द्वारा जीवन सार्थक हो जाता है और समूचा कार्य-कलाप प्रयोजन-शीलता ग्रहण कर लेता है। ....परिवर्तन के बीच शाश्वत सत्य की खोज जीवन का सबसे महान रोमांच है।

मार्ग

परंतु यह प्रश्न तो बना ही रहता है कि ईश्वर को कैसे जानें और उसका साक्षात्कार किस प्रकार करें? इस प्रश्न का उत्तर मेहर बाबा इस प्रकार देते हैं, "यदि तुम ईश्वर के बारे में जानना चाहते हो और उसके पास तक पहुंचना चाहते हो तो उसके लिए बाबा का दामन (आंचल) पकड़ लो। ....कम से कम 14 बार बाबा के नाम का जप करो और हो सके तो इससे भी अधिक—"बाबा, बाबा, बाबा।" एक दिन ऐसा आयेगा कि अज्ञान का आवरण पल भर में छिन्न-भिन्न हो जायेगा। बाबा नाम का जप प्रेमपूर्वक करो। यह बात मैं तुम्हें अधिकारपूर्वक कहता हूं।"

सीमोल्लंघन

मेहेर बाबा कहा करते थे, "मैं कभी नहीं मरूंगा।" यह बात इस अर्थ में सही थी कि मरता केवल शरीर है, आत्मा अमर और शाश्वत है। जहां तक भौतिक शरीर का संबंध है, जन्म लेने वाले हर प्राणी को एक न एक दिन यह शरीर छोड़ना ही पड़ता है। मेहेर बाबा ने अपने भौतिक कलेवर को समेटने के लिए शुक्रवार, 31 जनवरी, 1969 का दिन चुना। दोपहर का समय था और बाबा अपने प्रेमियों और भक्तों के बीच बैठे थे कि अचानक उन्होंने शरीर छोड़ दिया।

समूचे विश्व में मेहेर बाबा के असंख्य भक्त हैं। संसार भर में उनकी स्मृति में अनेक केन्द्रों की स्थापना हुई है, जो उनका यह संदेश फैलाते हैं, "जीवन का लक्ष्य ईश्वर के प्रति प्रेम है, जीवन का सर्वोच्च ध्येय ईश्वर के साथ एकाकार हो जाना है।"

श्री महाप्रभुजी और योग-वेदांत समाज

भारत में राजस्थान की मिट्टी ने केवल वीर योद्धा और महान सम्राट ही उत्पन्न नहीं किये, उसने साधुओं, संतों, सिद्धों और गुरुओं को भी जन्म दिया। ऐसे ही एक महान दिव्य पुरुष श्री दीपनारायण जी थे, जिनको उनके शिष्य महाप्रभुजी कहकर संबोधित करते थे।

श्री दीपनारायण जी का जन्म नागौर जिले के हरिवासिनी गांव में हुआ था और उनका बचपन का नाम दीपपुरी था। दीपपुरी के पिता श्री उदयपुरी भगवान शंकराचार्य की परंपरा में चले आ रहे एक मठ के महंत और अपने क्षेत्र के जाने-माने एवं आध्यात्मिक नेता थे। उनकी मां चंदना देवी अपने साधु-प्रकृति पति के चरण-चिह्नों पर चलती थीं और भगवान राम, भगवान कृष्ण और भगवान शिव की परम भगत थीं। वे गाय, अतिथि और विशेषत: साधुओं की सच्चे मन से सेवा करती थीं।

एक दिन जिस समय वे भगवान शिव का ध्यान कर रही थीं, उनको ऐसी अनुभूति हुई कि भगवान शिव ने उनकी कोख से एक दिव्य बालक के जन्म का वरदान दिया है। उनकी यह अनुभूति सही सिद्ध हुई। ठीक नौ महीने पश्चात् 5 नवंबर, 1828 को दीपावली के दिन प्रात: 4 बजे ब्रह्म मुहूर्त में उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया।

बालक का जन्म होने पर उसके पिता ने प्रसिद्ध ज्योतिषी पं. प्रेमशंकर से उनकी जन्म-कुंडली तैयार करायी। पंडितजी ने गृह-दशा का अध्ययन करने के पश्चात् भविष्यवाणी की कि बालक वैदिक धर्मग्रंथों का महान विद्वान तो होगा ही, महान संत और दिव्य पुरुष भी होगा। बालक का नाम दीपपुरी रखा गया। ज्योतिषी ने यह भविष्यवाणी भी की कि दीपपुरी को अपनी दैवी और यौगिक शक्तियों के कारण समूचे विश्व में ख्याति प्राप्त होगी और उसके शिष्य योग और वेदांत का उसका संदेश पश्चिमी जगत के निरीश्वरवादियों तक पहुंचायेंगे।

19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इस भविष्यवाणी पर आसानी से विश्वास नहीं किया जा सकता था कि राजस्थान की मरूभूमि पर बसे एक अज्ञात गांव में जन्म लेने वाला एक बालक उस पश्चिमी जगत में आध्यात्मिक गुरु के रूप में ख्याति प्राप्त करेगा, जिसने भारत सहित समूचे संसार पर अपना आधिपत्य जमा रखा था।

चुंबकीय व्यक्तित्व तथा आध्यात्मिक ज्ञान के भंडार श्री दीपनारायण महाप्रभुजी ने वेदांत का संदेश केवल भारत में ही नहीं बल्कि पश्चिमी जगत के निरीश्वरवादियों तक पहुंचाया।

दीपपुरी बचपन से ही ज्ञानी पुरुष थे और जब उनको गुरुओं ने धर्मशास्त्रों के पाठ पढ़ाये तो उन्होंने उन पाठों को तो बहुत जल्दी समझ ही लिया, उनके गहरे और छिपे हुए अर्थ भी जान लिये।

बचपन में वे अपनी गायों के झुंड को लेकर उन्हें चराने के लिए दूर जंगल में जाया करते थे। एक बार उनकी मुठभेड़ एक डाकू से हो गयी, जो उनकी गायें चुराने की चेष्टा कर रहा था। दीपपुरी ने अपने चुंबकीय व्यक्तित्व और अपनी आध्यात्मिक शिक्षाओं के द्वारा उस डाकू का हृदय-परिवर्तन कर दिया। इसी प्रकार एक बार उनकी मुठभेड़ एक मुसलमान शिकारी से हो गयी। उन्होंने उसे जीव हत्या न करने का उपदेश दिया। दीपपुरी ने उसे समझाया कि अल्लाह सभी जीवों की आत्मा में निवास करता है और यदि उसे अल्लाह से प्यार है तो उसे जीवों की हत्या नहीं करनी चाहिए। शिकारी लाल खां ने उसी दिन से पशु-पक्षियों का शिकार करना और मांस खाना छोड़ दिया।

गुरु से भेंट

उन दिनों उत्तर भारत में एक महान आध्यात्मिक [illegible] थे, जो प्रायः हिमालय में ही रहा करते थे। श्री [illegible] देवपुरी जी अपने गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करके [illegible] रहने चले आये। वे शीघ्र ही अपनी यौगिक शक्तियों के [illegible] गये। माउंट आबू पर रहने वाले अंग्रेज अधिकारी [illegible] थे तथा उनका बहुत आदर करते थे। श्री [illegible] आध्यात्मिक शिक्षा प्रदान करने के लिए घूमा करते थे। [illegible] गांव हरिवासिनी के निकट कैलाश नामक गांव में एक आश्रम [illegible]

दीपपुरी अपने माता-पिता की छाया में बड़े हो रहे थे। इसी बीच श्री देवपुरी जी बड़ी खाटू के सामंत सरदार ठाकुर मोहन सिंह के निमंत्रण पर उनके यहां गये। वह एक पहाड़ी क्षेत्र है। देवपुरी जी कुछ समय के लिए वहीं बस गये।

एक दिन बालक दीपपुरी अपनी गायों के झुंड के पीछे-पीछे उस स्थान पर जा निकले, जहां देवपुरी जी समाधि लगाये बैठे थे। बालक ने देवपुरी जी के सामने जाकर उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। देवपुरी जी की समाधि ठीक उसी समय खुली और उन्होंने अपने सामने उस बालक को देखा। यह गुरु और शिष्य की प्रथम भेंट थी। गुरु की पहली दृष्टि पड़ते ही बालक दीपपुरी के भीतर दैवी-चेतना जाग उठी और बालक ने तुरंत यह महसूस किया कि देवपुरी जी को ईश्वर ने ही उसका आध्यात्मिक गुरु बनाकर वहां भेजा है।

गुरु ने शिष्य को योग के रहस्य सिखाये और जब वे उस विद्या में पूर्ण हो गये तो गुरु ने शिष्य के ज्ञान और उसकी निष्ठा की परीक्षा लेकर उसे योगी घोषित कर दिया। अब वे दीपपुरी से स्वामी दीपनारायण बन गये। गुरु के आदेश पर स्वामी दीपनारायण ने अपना घर छोड़ दिया और मरघट की भूमि पर संन्यास आश्रम की स्थापना की। यह आश्रम आज भी देवडूंगरी संन्यास आश्रम के नाम से प्रसिद्ध है।

चमत्कार

श्री दीपनारायण महाप्रभुजी ईश्वर के अनन्य प्रेमी थे। चमत्कारों में उनकी तनिक आस्था न थी परंतु यौगिक शक्तियों के कारण उनसे अनेक चमत्कार हो जाते थे। अंधे की आंखों की रोशनी आ जाती और स्वामी दीपनारायण जी के पुकारने पर मुर्दे उठ खड़े होते, परंतु इसके कारण उनके मन में किसी प्रकार का अहंकार नहीं जग पाया। वे हिन्दू और मुसलमान में किसी प्रकार का भेद नहीं करते थे और उनकी कृपा सब लोगों पर समान रूप से बरसती रहती थी। सभी धर्मों के लोग उनका समान आदर करते थे। मुसलमान उन्हें अपना पीर मानते थे और हिन्दू एक महान योगी।

गांधी जी का प्रेम

20वीं शताब्दी के दूसरे दशक के अंत में भारत के स्वतंत्रता-संग्राम की बागडोर महात्मा गांधी ने अपने हाथों में संभाली। दक्षिणी अफ्रीका से भारत लौटने पर गांधी जी ने अहमदाबाद के समीप साबरमती में अपना आश्रम स्थापित किया था। महाप्रभुजी एक आध्यात्मिक गुरु थे। महात्मा गांधी के प्रति उनका आकर्षण विशेषतः इस कारण था कि गांधी जी सत्य और अहिंसा पर बल देते थे।

एक बार महाप्रभुजी अपने अनुयायियों सहित माउंट आबू पर ठहरे हुए थे। अचानक उन्होंने अपने साथ के लोगों से कहा कि सब लोग साबरमती आश्रम चलेंगे और वहां के लिए निकल पड़े। गांधी जी को जब महाप्रभुजी के आगमन का समाचार मिला तो वे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने आश्रम के द्वार पर जाकर महाप्रभुजी का स्वागत किया। भारत के इन महान संतों का मिलन एक स्वर्णिम और दिव्य अनुभूति बन गया।

गांधी जी ने शाम की प्रार्थना के समय महाप्रभुजी से भजन गाने और आश्रमवासियों के सम्मुख प्रवचन करने का अनुरोध किया। यह भी अपने आप में एक दिव्य अनुभूति थी। महाप्रभुजी अत्यंत भावपूर्वक संकीर्तन करने लगे, जिससे वहां उपस्थित सब लोग आनंदविभोर हो उठे। संकीर्तन के बाद महाप्रभुजी ने गांधी जी से कहा कि "आप ईश्वर के अवतार हैं और इस अवतार का प्रयोजन भारत को बुराई की शक्तियों से मुक्त कराना है। आप अपने लक्ष्य में अवश्य सफल होंगे। भारत के लिए आपकी सेवाएं हमेशा याद की जायेंगी। आपकी जीवन-गाथा अमर हो जायेगी और वह आने वाली पीढ़ियों को प्रेरणा देती रहेगी।"

महाप्रभुजी ने अपने प्रवचन में सर्वव्याप्त परमात्मा की सर्वोच्चता, मनुष्य और मनुष्य की बीच समानता और जीवन-कर्म में सत्य के पालन पर बल दिया। महाप्रभुजी दृष्टा थे। योगाभ्यास से उन्हें भूतकाल और भविष्यकाल की घटनाओं को देखने की शक्ति प्राप्त हो गयी थी। आश्रम में बैठे-बैठे ही महाप्रभुजी ने आंखें बंद कीं और वे अतीत में खो गये। चेतना लौटने पर उन्होंने श्रोताओं से कहा, "बहुत समय पहले महात्मा गांधी अजयपाल नामक राजा थे, वे बहुत सादगी से रहते थे, अपने लिए राजकोष से एक कौड़ी भी नहीं लेते थे और अपने निर्वाह के लिए बकरियां पालते थे। वे बहुत दयालु और सत्यानुरागी राजा थे। एक बार लंका के राजा रावण के साथ उनका संघर्ष हो गया, किंतु अंत में रावण ने उनके राज्य पर उनकी प्रभुता को स्वीकार कर लिया।"

वे सच्चे अर्थों में एक आध्यात्मिक गुरु थे तथा धर्मों और संप्रदायों में भेदभाव नहीं रखते थे। एक बार वे हिन्दुओं के पवित्र तीर्थ पुष्कर में ठहरे हुए थे। पुष्कर से थोड़ी ही दूर अजमेर में उन्हीं दिनों हिन्दू-मुस्लिम तनाव उत्पन्न हो गया। महाप्रभुजी ने दोनों धर्मों के लोगों को समझाया। उनकी बात दोनों पक्षों की समझ में आ गयी और तनाव समाप्त हो गया।

स्वामी माधवानंद

महाप्रभुजी के शिष्यों की संख्या बहुत बड़ी थी, उनमें स्वामी माधवानंद उनके सबसे अधिक निकट थे। स्वामी माधवानंद दिन-रात पूरी निष्ठा और श्रद्धा से महाप्रभुजी की सेवा करते थे। महाप्रभुजी के गुरु ने भविष्यवाणी की थी कि महाप्रभुजी का अध्यात्म, वेदांत और योग का संदेश समूचे विश्व में फैलेगा और उस संदेश को फैलाने की जिम्मेदारी महाप्रभुजी की शिष्य-परंपरा में एक योगी उठायेगा।

महाप्रभुजी ने अपनी समस्त योग-शक्तियां अपने परम शिष्य स्वामी माधवानंद को प्रदान कर दीं तथा यह भविष्यवाणी भी कर दी कि उनका प्रेम, अध्यात्म और योग का संदेश पश्चिमी देशों में स्वामी माधवानंद का एक शिष्य फैलायेगा। स्वामी माधवानंद के यही शिष्य बाद में महेश्वरानंद के नाम से प्रसिद्ध

श्री महाप्रभुजी द्वारा महासमाधि लेने के बाद अध्यात्म तथा योग की ज्योति को प्रज्वलित रखने का दायित्व उनके पट्ट शिष्य श्री माधवानंद जी पर आन पड़ा।

हुए। स्वामी माधवानंद को अपने गुरु पर बहुत श्रद्धा भी थी और वे उनके महासमाधि लेने तक उनकी सेवा मनोयोगपूर्वक करते रहे।

सीमोल्लंघन

मार्च, 1963 में स्वामी माधवानंद साबरमती आश्रम में थे। अचानक एक दिन उन्हें महाप्रभुजी का संदेश मिला कि खादी की एक सफेद चादर लेकर तुरंत लौट आओ। माधवानंद जी ने गुरु के आदेश का तुरंत पालन किया और वे उनके समीप पहुंच गये। अगले दिन महाप्रभुजी ने स्वामी माधवानंद से कहा कि पौषमास की कृष्णा चतुर्थी के दिन वे शरीर त्याग देंगे।

माधवानंद ने महाप्रभुजी के कथन पर गंभीरता से ध्यान नहीं दिया और वह बात उनकी स्मृति से निकल गयी। अंततः निश्चित दिन आ पहुंचा। आश्रम की गतिविधियां सामान्य तौर पर चल रही थीं। शाम को 5 बजे से कुछ पहले महाप्रभुजी ने अपने शिष्यों को अपने पास बुलाकर उनसे कहा, "तुममें से किसी को मुझसे कुछ कहना या पूछना हो तो कह डालो अथवा पूछ लो। मेरे लिए संसार छोड़ने का समय आ गया है, परंतु याद रखना कि मैं हमेशा तुम्हारे साथ रहूंगा।"

ठीक 5 बजते ही महाप्रभुजी पद्मासन लगाकर और कमर सीधी करके बैठ गये। उन्होंने अपना प्राण ब्रह्मरंध्र में चढ़ाया और शरीर छोड़ दिया। उस समय वे 135 वर्ष के थे। अगले दिन महाप्रभुजी को देवडूंगरी संन्यास आश्रम में ही समाधि दे दी गयी।

स्वामी महेश्वरानंद

महाप्रभुजी द्वारा महासमाधि लेने के बाद उनके शिष्यों और अनुयायियों की दृष्टि महाप्रभुजी के उत्तराधिकारी स्वामी माधवानंद पर टिकी। स्वामी माधवानंद ने कालांतर में जयपुर तथा पाली जिलों के नीपल गांव में आश्रमों की स्थापना की।

स्वामी महेश्वरानंद की गतिविधियों का सबसे आश्चर्यजनक पक्ष यह रहा कि धर्म को अफीम मानने वाली साम्यवादी सरकारों द्वारा न केवल उनके प्रवचनों के कार्यक्रम आयोजित किये गये अपितु उनकी पुस्तकें भी प्रकाशित की गयीं।
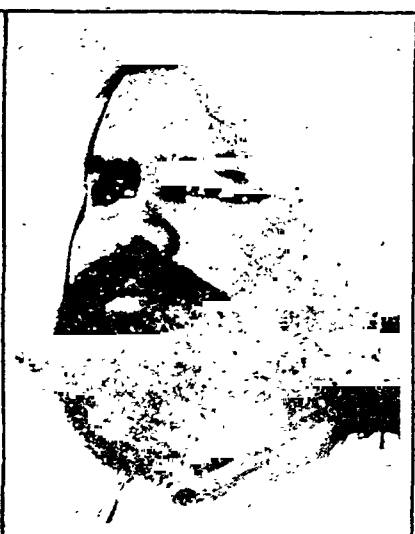
इसी बीच 15 अगस्त, 1955 को राजस्थान के एक गांव रूपावास में पं. कृष्णराम गर्ग की धर्मपत्नी फूलकंवरी देवी की कोख से एक बालक का जन्म हुआ। पं. कृष्णराम एक विद्वान ज्योतिषी, ईश्वर भक्त और धर्मग्रंथों के कुशल ज्ञाता थे। बालक का नाम रखा गया मांगीलाल। मांगीलाल केवल 12 वर्ष का था, तभी उसके पिता का देहांत हो गया। उसकी मां स्वामी माधवानंद की बहन थी, अतः बालक को शिक्षा प्राप्त करने के लिए स्वामी जी के आश्रम में नीपल भेज दिया गया। आश्रम में भर्ती होने के कुछ समय बाद ही मांगीलाल ने स्वामी माधवानंद से यह आग्रह शुरू कर दिया कि उसे संन्यास की दीक्षा दी जाये। स्वामी जी ने सोचा कि यह अभी बालक है और संन्यास का अर्थ भी नहीं जानता, अतः उन्होंने मांगीलाल को दुनियादारी में उलझाने की कोशिश की—पहले छोटा-सा व्यापार कराया और बाद में नौकरी दिलवा दी।

अब मांगीलाल संन्यास लेने के लिए अधीर हो उठा और एक दिन उसने स्वामी माधवानंद को लिखा कि यदि उसे संन्यास नहीं दिया गया तो वह आत्मघात कर लेगा। यह पत्र पाकर स्वामी माधवानंद को विश्वास हो गया कि मांगीलाल एक सच्चा साधक है और उसकी आत्मा उन्नत है। उन्होंने मांगीलाल को अपना शिष्य बनाना स्वीकार कर लिया और कुछ समय बाद उसे संन्यास दे दिया। अब वे मांगीलाल से स्वामी महेश्वरानंद हो गये।

योग-वेदांत-समाज

सन् 1972 में स्वामी महेश्वरानंद भारत से युरोप की यात्रा पर निकले। उसी वर्ष उन्होंने ऑस्ट्रिया की राजधानी वियना में अपना मुख्य केन्द्र स्थापित करके महाप्रभुजी के योग और वेदांत के संदेश का प्रचार शुरू कर दिया। शीघ्र ही युरोप के लोग उनके चारों ओर इकट्ठे हो गये और वियना में श्री दीप माधवाश्रम की

स्थापना हुई, जहां अध्यात्म विद्या के व्यापक प्रशिक्षण का कार्यक्रम शुरू किया गया। वह कार्यक्रम वहुत लोकप्रिय रहा और स्वामी महेश्वरानंद ने शीघ्र ही योग संवंधी अपने ग्रंथों का युरोपीय भाषाओं में प्रकाशन शुरू कर दिया।

यह वह समय था जव सोवियत रूस और पूर्वी युरोप के साम्यवादी देश पूरी तरह वंद समाज वने हुए थे। निरीश्वरवाद के इस दुर्ग में स्वामी महेश्वरानंद निर्भीकतापूर्वक जा घुसे। उन्होंने साम्यवादी देशों को यह समझाने में सफलता प्राप्त कर ली कि योग का धर्म से तनिक भी संवंध नहीं है।

इसका सद्परिणाम यह हुआ कि उन्हें पूर्वी युरोप के साम्यवादी देशों—पूर्वी जर्मनी, हंगरी, चेकोस्लोवाकिया और युगोस्लाविया आदि में योग तथा वेदांत के आध्यात्मिक सिद्धांतों की शिक्षा देने की अनुमति प्राप्त हो गयी। उन देशों में स्वामी महेश्वरानंद की गतिविधियों का सवसे आश्चर्यजनक पक्ष यह रहा कि उनके कार्यक्रमों का आयोजन राज्य सरकारों की ओर से किया गया और उनकी पुस्तकें सरकारी प्रकाशन-गृहों से प्रकाशित हुईं।

स्वामी महेश्वरानंद ने लंवी-लंवी यात्राएं कीं और पश्चिमी जर्मनी, इंग्लैंड, कनाडा, अमरीका तथा आस्ट्रेलिया आदि अनेक देशों में योग वेदांत केन्द्र स्थापित किये। वे नियमित रूप से प्रतिवर्ष अपने विदेशी शिष्यों के साथ भारत आते हैं तथा अपने गुरु स्वामी माधवानंद के चरणों में वैठकर वेदांत के पाठ दोहराते हैं। उन्होंने कई वार स्वामी माधवानंद को युरोप में आमंत्रित किया। अपनी इन यात्राओं के दौरान स्वामी माधवानंद ने चिकित्सा-विज्ञानियों के सामने अपनी यौगिक शक्तियों का प्रदर्शन किया। चिकित्सा-विज्ञानियों ने उनके मस्तिष्क की तरंगों को उस समय ग्राफ पर उतारा, जिस समय स्वामी जी समाधि में थे और उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि समाधि-अवस्था में स्वामी जी का मन और मस्तिष्क पूर्णतया शांत तथा निष्क्रिय हो जाता है।

ज्योतिपुंज

अपने शिष्य स्वामी माधवानंद तथा पट्ट-शिष्य स्वामी महेश्वरानंद के माध्यम से श्री दीपनारायण महाप्रभुजी ही संसार भर में अध्यात्म और योग की ज्योति प्रज्वलित कर रहे हैं। इसी भाव को मिशीगन (अमरीका) की एक साधिका श्रीमती डेवोराह पामर शोवर ने इन शव्दों में व्यक्त किया है, "श्री दीपनारायण महाप्रभुजी निस्संदेह ईश्वर का अवतार हैं। उनका जीवन यह प्रमाणित करता है कि सत्य का सजीव प्रकाश विश्व से लुप्त नहीं हुआ, वरन् यदि हम सही स्थान पर खोजें और ऊपरी-सतह के नीचे उस अनुभूति के स्तर तक उतरते चले जायें, जो भौतिक अस्तित्व के परे है तो हम अपने भीतर उस प्रकाश को अनुभव कर सकते हैं।"

■■

स्वामी मुक्तानंद और सिद्ध योग

"ईश्वर की प्राप्ति गुरु के विना असंभव है। ज्ञान के प्रकाश से आलोकित गुरु परब्रह्म का अवतार होता है। ऐसे गुरु की दिव्य कृपा प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए। जव तक गुरु-कृपा से कुंडलिनी शक्ति जागृत नहीं होती, तव तक हमारे हृदय में प्रकाश नहीं हो सकता, दिव्य-ज्ञान प्रदान करने वाला अंतर्चक्षु नहीं खुल पाता और हमारे वंधन समाप्त नहीं हो सकते। आंतरिक-विकास, दिव्यत्व की प्राप्ति और परा-शिव की अवस्था तक पहुंचने के लिए एक मार्गदर्शक अर्थात् ऐसे सद्गुरु की परम आवश्यकता है, जो आध्यात्मिक-शक्ति संपन्न हो। जिस प्रकार प्राण के विना जीवन असंभव है, उसी प्रकार गुरु के विना ज्ञान, शक्ति का उदय और विकास, अंधकार का विनाश तथा तीसरे नेत्र का खुलना असंभव है। ....गुरु की महिमा रहस्यमय और सवसे अधिक दिव्य होती है।"

"सच्चा गुरु अपने शिष्य की आंतरिक शक्ति को जगा देता है तथा उसे आध्यात्मिक आनंद प्रदान करता है। ....वह शक्तिपात के द्वारा भीतर की शक्ति अर्थात् कुंडलिनी को जागृत कर देता है। वह सव के लिए पूजा के योग्य है।"

निस्संदेह प्रत्येक जिज्ञासु और विद्यार्थी विशेषतः सत्य और परमेश्वर के साधकों और उपासकों के जीवन में गुरु अर्थात् शिक्षक का स्थान वहुत ऊंचा होता है। शक्तिपात में विश्वास रखने वाले साधकों के जीवन में तो गुरु का स्थान सवसे ऊपर होता है। शक्तिपात की परंपरा में वीसवीं शताव्दी के अग्रिम पंक्ति के गुरुओं में गणेशपुरी के स्वामी मुक्तानंद का एक प्रमुख स्थान है।

प्रारंभिक जीवन

स्वामी मुक्तानंद का जन्म सन् 1908 में भगवान वुद्ध के जन्मदिन अर्थात् वैशाख पूर्णिमा—16 मई को हुआ था। उनके माता-पिता कर्नाटक के दक्षिण कनारा जिले में धर्मस्थल के भगवान मंजूनाथ—भगवान शिव के भक्त थे। उनके पिता धनी जमींदार थे और मंगलूर शहर के पास नेत्रवती नदी के तट पर वसे एक गांव में रहते थे। उनका वचपन का नाम कृष्णा था।

वालक कृष्णा को स्कूल में भेजा गया परंतु उसके प्रारव्ध में तो वैदिक वांगमय तथा मानवीय-चेतना को जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति प्रदान करने वाली विद्या प्राप्त करना लिखा था। जव वे कोई पंद्रह वरस के ही रहे होंगे, तभी

उनकी भेंट एक महान योगी, रहस्यवादी और सिद्ध पुरुष [illegible]
साथ हुई। स्वामी नित्यानंद दिव्य पुरुष थे। वे जातपांत और धर्म के आधार पर मनुष्यों में भेद नहीं करते थे तथा सभी धर्मों और मतों के लोग उनका आदर और उनकी सेवा करते थे। एक वार एक धनी मुसलमान भक्त ने वावा नित्यानंद के सम्मान में मंगलूर के समीप एक वड़ा भोज दिया। कृष्णा और वावा नित्यानंद की भेंट उसी दावत के अवसर पर हुई।

सिद्ध संत वावा नित्यानंद ने कृष्णा को सीने से चिपका लिया और उसके गालों को थपथपाया। इससे कृष्णा को एक विलक्षण अनुभूति प्राप्त हुई और ऐसा लगा जैसे कोई चुंबकीय शक्ति उसे समाधि की अवस्था में खींच रही हो। यह शक्तिपात था। स्वामी नित्यानंद की दिव्य-शक्ति कृष्णा के अस्तित्व में भीतर तक उतर गयी और उसे उसी क्षण दिव्य व्यक्तित्व प्राप्त हो गया।

कृष्णा के घर का वातावरण वहुत आध्यात्मिक और पवित्र था। उसने कृष्णा के मन में स्वामी नित्यानंद द्वारा वोये गये वीज को पोषण प्रदान किया और कृष्णा उस महान गुरु के साथ भेंट के छः महीने के भीतर ही घर छोड़कर निकल पड़ा। इधर-उधर भटकने के वाद वह एक महान योगी तथा वेदांत और योग के परम विद्वान सिद्धारूढ़ स्वामी के आश्रम में जा पहुंचा। कृष्णा को आश्रम में प्रवेश मिल गया और वह शीघ्र ही स्वामीजी का प्रिय शिष्य वन गया। वहां उसे संस्कृत तथा योग और वेदांत के प्रारंभिक सूत्र सिखाये गये। सिद्धारूढ़ स्वामी ने कृष्णा को संन्यास की दीक्षा प्रदान कर दी और अव वे कृष्णा से स्वामी मुक्तानंद हो गये।

सिद्धारूढ़ स्वामी ने सन् 1929 में शरीर छोड़ दिया। इसके वाद स्वामी मुक्तानंद कुछ समय तक सिद्धारूढ़ स्वामी के योग्य शिष्य मुप्पिनार्य स्वामी के साथ धारवाड़ जिले में उनके मठ में रहे। यहां भी उन्होंने धर्म-ग्रंथों का गहन अध्ययन किया। इसके वाद कुछ समय तक वे दावनगिरि में स्वामी शिवानंद के आश्रम में वेदांत के ग्रंथों का अध्ययन करते रहे। वहां से स्वामीजी ने वाराणसी जाकर शैवमत का अध्ययन किया। कुछ समय तक महाराष्ट्र में रहकर उन्होंने संत ज्ञानेश्वर महाराज, संत नामदेव, संत एकनाथ, संत तुकाराम और समर्थ रामदास सरीखे संतों और महात्माओं की शिक्षाओं से परिचय प्राप्त किया। वे योग तथा आयुर्वेद का भी अभ्यास करने लगे।

इस अवधि में उन्हें कठोर साधना तथा जीवन-साधनों के अभाव की कठिनाइयों में से गुजरना पड़ा। काफी समय वाद वे महाराष्ट्र के नासिक जिले में येवला नामक स्थान पर जा पहुंचे और वहां कुटी वनाकर रहने लगे। वहीं से वे इधर-उधर घूमते भी रहे। येवला में वे लोगों के संपर्क में आये तथा नाम-संकीर्तन और धार्मिक प्रवृत्तियों में संलग्न हुए। स्वामीजी का जीवन तपस्यामय था तथा वे हिमालय से कन्याकुमारी तक यात्राएं भी करते रहे।

इन यात्राओं के दौरान वे अनेक साधु-संतों से मिले। उनमें से जलगांव जिले में नसीरावाद के अवधूत संत जिप्रु अन्ना एवं औरंगावाद जिले में वैजापुर के संत

जलगांव जिले में नसीराबाद के अवधूत संत जिप्रु अन्ना

संत मुक्तानंद संत हरिगिरि बाबा (कोट पहने) के साथ

हरिगिरि बाबा के प्रति वे सबसे अधिक आकर्षित रहे। जिप्रू अन्ना एक महान अवधूत और ब्रह्मज्ञानी थे। हरिगिरि बाबा तो विलक्षण ही थे, वे राजाओं जैसे वस्त्र पहनते और मस्त रहते। उन्होंने स्वामी मुक्तानंद को आशीर्वाद दिया कि वे भी राजाओं की तरह वैभव भोगेंगे। स्वामी मुक्तानंद सकोरी के उपासनी बाबा, केडगांव के नारायन महाराज और रमण महर्षि से भी मिले थे।

एक बार स्वामी मुक्तानंद गणेशपुरी जा पहुंचे, जहां स्वामी नित्यानंद का स्थान था। स्वामी नित्यानंद की दृष्टि जैसे ही स्वामी मुक्तानंद पर पड़ी, वे हठात् कह उठे, "अच्छा तो तुम आ गये!" इन शब्दों ने स्वामी मुक्तानंद के चित्त में दशाब्दियों पहले की उस भेंट की स्मृति को जगा दिया, जब वे पहले-पहल बाबा नित्यानंद से मंगलूर में मिले थे। जुलाई, 1947 से स्वामी मुक्तानंद वज्रेश्वरी मंदिर के समीप रहने लगे, जहां से वे स्वामी नित्यानंद के दर्शनों के लिए आसानी से जा सकते थे। कुछ समय बाद वे येवला लौट गये, परंतु समय-समय पर वहां से गणेशपुरी जाते रहे। शीघ्र ही उन्हें स्वामी नित्यानंद से शक्तिपात-दीक्षा प्राप्त हो गयी और वे स्वयं सिद्धयोग के गुरु बन गये।

स्वामी नित्यानंद के आदेश पर 16 नवंबर, 1956 के दिन स्वामी मुक्तानंद को गणेशपुरी आश्रम में गुरु के स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया और वे गणेशपुरी आश्रम में गुरु की छत्रछाया में रहने लगे। तब गणेशपुरी आश्रम का निर्माण शुरू ही हुआ था। 3 अगस्त, 1961 को स्वामी नित्यानंद ने पंचतत्त्व का चोला छोड़ दिया और स्वामी मुक्तानंद ने आश्रम में उनका स्थान ग्रहण कर लिया।

धीरे-धीरे स्वामी मुक्तानंद की ख्याति दूर-दूर तक फैलने लगी और आश्रम का विकास होने लगा।

पश्चिम-विजय

बाबा मुक्तानंद सन् 1970 में युरोप, अमरीका, आस्ट्रेलिया और हवाई गये तथा लगभग साढ़े तीन महीने वहां बिताकर स्वदेश लौटे। उन्होंने पश्चिमी जगत से कहा, "ध्यान कोई धर्म नहीं है, न वह किसी धर्म अथवा देश की बपौती है। वह तो शांति का मार्ग है और यह मार्ग सब के लिए खुला है। ईश्वर समान रूप से सब का है। वह तुम्हारे भीतर है। तुम स्वयं ही ईश्वर हो।"

बाबा मुक्तानंद की दूसरी विदेशी यात्रा 26 फरवरी, 1974 को आरंभ हुई तथा वे तीन महाद्वीपों—आस्ट्रेलिया, अमरीका और युरोप के देशों में गये। वे लगभग अढ़ाई वर्ष वहां रहे। इस बीच अमरीका में उनके संदेश के प्रचार-प्रसार के लिए अनेक आश्रम स्थापित हुए। मई, 1975 में उनके जन्मदिन के अवसर पर 'सिद्धयोग-धाम ऑफ अमरीका' नामक संस्थान का गठन किया गया। उन्होंने 2 अक्तूबर, 1982 को महासमाधि ले ली।

बाबा की शिक्षाएं

स्वामी मुक्तानंद ने घोषणा की कि मनुष्य मूलतः शुद्ध और दैवी है, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य के हृदय में ईश्वर का निवास है।

बाबा आत्म-चेतना अथवा आत्म-साक्षात्कार पर अधिक बल देते थे। जहां तक चमत्कारों का संबंध है, वे तो चेतना के निम्नतर स्तरों की उपज होते हैं। बाबा मानवीय चेतना को उन उच्च स्तरों तक उठाना चाहते थे, जहां पहुंचकर वह सर्वोच्च-चेतना के साथ एकाकार हो जाती है। वे अपने शिष्यों को निर्देश देते हैं: "स्वयं को जानो।" स्वयं का ज्ञान—आत्मज्ञान ही मनुष्य को सच्ची प्रसन्नता अर्थात् आनंद प्रदान कर सकता है। उन्होंने शक्तिपात द्वारा साधकों की दिव्य-चेतना जगाने को ही अपना लक्ष्य माना।

बाबा ने अपने गुरु की कृपा से दिव्य-शक्ति प्राप्त की थी तथा वे स्वयं यह दिव्य-चेतना अथवा दिव्य-शक्ति अपनी कृपा के बल पर अपने शिष्यों को देने की चेष्टा करते रहे। वे ऐसा मानते थे कि शिष्य को सर्वोच्च चेतना की प्राप्ति केवल गुरुकृपा से ही हो सकती है। गुरु से शिष्य में दिव्य-शक्ति का अवतरण एक सूक्ष्म आध्यात्मिक प्रक्रिया है। एक दीपक से दूसरे दीपक को प्रज्वलित करने के समान।

बाबा मुक्तानंद के अनुसार शक्तिपात साधक की कुंडलिनी शक्ति को जगा देता है। कुंडलिनी के जागरण से ही साधक को आत्मदर्शन प्राप्त होता है। यही सिद्धयोग है। इसके दो प्रमुख लक्षण हैं—सहजता और त्वरा। शिष्य में दिव्य-ज्ञान का अवतरण गुरुकृपा से ही होता है। यह दिव्य-चेतना के अवतरण की प्रक्रिया है।

यह अवतरण गुरुकृपा से ही संभव है। शिष्य को गुरुभक्ति के द्वारा गुरुकृपा प्राप्त करनी होती है। इस संकीर्ण अर्थ में बाबा मुक्तानंद की पद्धति और उनके दर्शन को गुरु-संस्कृति माना जा सकता है। ■■

आध्यात्मिक पुनर्निर्माण का मसीहा—रजनीश

"मैं देख रहा हूं कि मनुष्य पूर्णतया दिशा-भ्रष्ट हो गया है, वह एक ऐसी नौका की तरह है, जो मंझदार में भटक गयी है। वह यह भूल गया है कि उसे कहां जाना है और वह क्या होना चाहता है। ....इसके साथ ही मैं समूचे विश्व में एक आध्यात्मिक पुनर्निर्माण का दर्शन भी कर रहा हूं। एक नये मानव का जन्म होने वाला है और हम उसकी प्रसव वेदना से गुजर रहे हैं।"—जिस व्यक्ति को यह दर्शन हो रहा था, उसके अनुयायी उसे मनुष्य के आध्यात्मिक पुनर्निर्माण का मसीहा कहते हैं।

श्री रजनीश का जन्म मध्यप्रदेश के एक छोटे से गांव कचवाड़ा में 11 दिसंबर, 1931 को हुआ था। उनके पिता कपड़े के धनी व्यापारी थे और जैन धर्म का पालन करते थे। रजनीश ने दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया और उसी विषय में प्रथम श्रेणी तथा विशेषता योग्यता के साथ स्नातकोत्तर डिग्री ली। कॉलेज के दिनों में वे वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में भाग लेते थे, जिनमें उन्होंने अनेक पुरस्कार भी जीते। वे कुशल वक्ता थे। सन् 1958 में वे जबलपुर विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक नियुक्त हुए और सन् 1966 तक वहीं पढ़ाते रहे। इस बीच वे भारत भर में घूमे और उन्होंने अपने भाषणों में धार्मिक रूढ़ियों पर गहरा प्रहार किया।

सन् 1966 में वे नौकरी छोड़कर स्वतंत्र रूप से आध्यात्मिक शिक्षण में लग गये। उनके बारे में कहा जाता है कि उन्हें किसी गुरु की सहायता तथा किसी प्रकार की कठोर साधना के बिना ही बोधि प्राप्त हो गयी थी।

उन्होंने वर्ष में चार बार सघन ध्यान-शिविर लगाने शुरू कर दिये। सन् 1968 में उन्होंने ध्यान की अपनी पद्धति में क्रांतिकारी परिवर्तन कर डाले और सक्रिय ध्यान की पद्धति अपनायी, जिसमें भीतर के विकारों की अभिव्यक्ति की प्रक्रिया निहित है। सन् 1969 से सन् 1974 तक उनका मुख्यालय बंबई में रहा. तब तक वे आचार्य रजनीश कहलाते थे।

सन् 1970 में वे आचार्य रजनीश से भगवान रजनीश हो गये। अब उन्होंने अपने अनुयायियों को नव-संन्यास की दीक्षा देनी शुरू कर दी और वे माउंट आबू में ध्यान शिविर लगाने लगे। यही वह समय था जब पश्चिमी देशों के युवक-युवतियां उनकी ओर आकर्षित होने शुरू हुए और उन्होंने रजनीश का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया।

सन् 1974 में रजनीश ने पुणे में एक आश्रम की स्थापना की और सात वर्ष तक योग, जेन, ताओ, तंत्र और सूफी मत सरीखे अनेक दार्शनिक विषयों पर प्रवचन किये। उनके इन प्रवचनों का संग्रह 500 से भी अधिक खंडों में प्रकाशित हुआ है और विश्व की 30 भाषाओं में उसका अनुवाद किया जा चुका है। रजनीश ने पूर्वी जगत की ध्यान पद्धति और पश्चिमी जगत की मनश्चिकित्सा पद्धति को मिलाकर एक नयी पद्धति का निर्माण किया है। संसार के लगभग सभी देशों और जीवन के प्राय: सभी क्षेत्रों के लोग उनकी ओर आकर्षित हुए हैं और उनसे जुड़े हैं।

सन् 1981 में उन्होंने कुछ वर्षों के लिए मौन ले लिया, इसी समय उनकी पीठ में कोई गंभीर रोग हो गया और अपने निजी चिकित्सकों की सलाह पर वे अपना पुणे आश्रम छोड़कर अमरीका चले गये। उसी वर्ष उनके अमरीकी शिष्यों ने अमरीका के ओरेगॉन राज्य में 64 हजार एकड़ का एक भूखंड खरीद लिया और उस पर रजनीश-प्रशंसकों की बस्ती बसा डाली। रजनीश को वहां आमंत्रित किया गया और रजनीश ने वहां बसना स्वीकार कर लिया। भूमि 60 लाख डॉलर में खरीदी गयी थी और तीन वर्षों में रजनीश के शिष्यों ने उस स्थान को एक आध्यात्मिक नगर में बदल डाला, जिसका नाम रखा गया रजनीशपुरम्। वहां उन्होंने एक शानदार सभागार बनाया, जिसमें 25 हजार लोग एक साथ बैठ सकते थे, इसका नाम रखा गया—रजनीश मंदिर। बस्ती में जेन ढंग के उद्यान लगाये गये, विलासितापूर्ण होटलों का निर्माण हुआ, मुर्गियां, गायें, घोड़े और एमू पाले गये। रजनीश के शिष्यों ने एक विशेष ट्रस्ट बनाकर बस्ती की समूची संपत्ति का

मनुष्य के पुनर्निर्माण के मसीहा श्री रजनीश
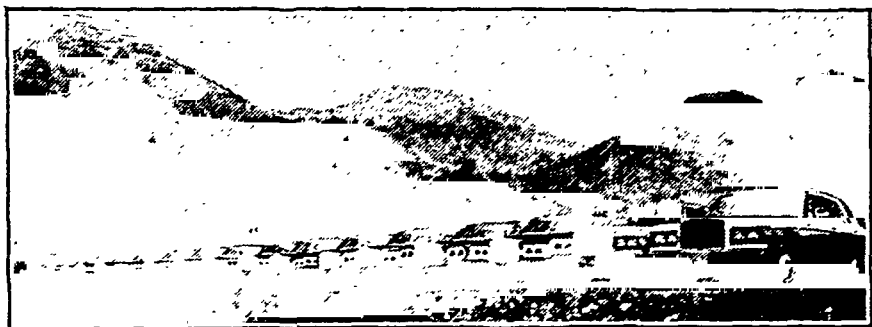
अमरीका के ओरेगॉन राज्य में स्थित रजनीशपुरम् में कतारबद्ध खड़ी रजनीश ट्रस्ट की 86 रॉल्स रायस कारें।

स्वामित्व उन्हें सौंप दिया। ट्रस्ट की ओर से भगवान श्री रजनीश को 86 रॉल्स रॉयस कारें भेंट की गयीं। ट्रस्ट के पास काफी पैसा था।

अमरीका और भारत दोनों देशों में एक आम धारणा उत्पन्न हो गयी थी कि रजनीशपुरम् में कुछ अभूतपूर्व कार्य हो रहा है। अमरीकी समाज और सरकार के कुछ तत्त्व रजनीश के विरुद्ध उठ खड़े हुए। उनकी सचिव मां शीला भी उनके विरुद्ध कार्य करने लगी और रजनीशपुरम् को भीतर ही भीतर नष्ट करने में लग गयीं। अंततः उसके षड्यंत्र का भेद खुल गया और सितंबर, 1985 में वह रजनीशपुरम् से भाग खड़ी हुई।

इसके बाद अमरीकी सरकार ने शीला द्वारा उत्पन्न की गयी गंदी परिस्थितियों का लाभ उठाकर रजनीश पर चोट शुरू की। उसने रजनीश को हथकड़ी और बेड़ी लगाकर तथा जंजीरों से बांधकर जेल में डाल दिया। अंततः रजनीश अमरीका छोड़ने के लिए विवश हो गये। 14 फरवरी, 1985 को वे विमान से भारत लौट आये और एक बार फिर अपने पुणे आश्रम में बस गये।

नाम-परिवर्तन

सन् 1966 से सन् 1970 तक रजनीश के अनुयायी उन्हें आचार्य रजनीश कहते थे। सन् 1970 में वे भगवान रजनीश हो गये। अपने नाम में भगवान जोड़ने के कारण रजनीश व्यापक आलोचना के शिकार हुए। उनकी आलोचना का एक कारण यह भी था कि वे अपने धनी और भोगी शिष्यों को संन्यासी कहने लगे थे। रजनीश ने स्पष्टीकरण देते हुए कहा कि "भगवान शब्द का अर्थ ईश्वर नहीं है, प्रत्येक उस व्यक्ति को भगवान कहा जा सकता है, जो आनंद की अवस्था में पहुंच गया है। यह बात निश्चित है कि मैं ईश्वर नहीं हूं। मैं अपने ऊपर यह जिम्मेदारी नहीं लेता कि यह संसार मैंने बनाया है—मैंने तो हरगिज नहीं बनाया है। संसार के निर्माण की जिम्मेदारी से आप मुझे मुक्त कर सकते हैं। मैं तो वैसा ही निरीश्वरवादी हूं, जैसे कि महावीर, बुद्ध और लाओ-त्जे थे। मेरा उस ईश्वर में तनिक विश्वास नहीं है, जिसके बारे में कहा जाता है कि उसने जगत का निर्माण

किया। जगत तो स्वयं ही सृजनशीलता है, परंतु भगवान शव्द का सर्वथा एक अलग ही आयाम है। इसका अर्थ केवल यह है कि जिस व्यक्ति को हम भगवान कह रहे हैं, वह पूर्ण आनंद की स्थिति में जी रहा है।"

जहां तक संन्यास का प्रश्न है, उस वारे में रजनीश ने स्पष्टीकरण देते हुए कहा, "मैं उस व्यक्ति को संन्यासी कहता हूं, जिसका न कोई धर्म हो, न गीता अथवा वाइविल सरीखा धर्म-ग्रंथ, जो किसी मंदिर, गिरजाघर अथवा गुरुद्वारा से तनिक न जुड़ा हो। ....हम यहां जो चेष्टाएं कर रहे हैं, उन से कोई संप्रदाय उत्पन्न होने वाला नहीं है, क्योंकि न तो कोई मेरा शिष्य है, न मैं किसी का गुरु अथवा स्वामी हूं और यदि मैं संन्यास लेने वाले कुछ लोगों का साक्षी वनना स्वीकार करता हूं तो इसका कारण यह है कि अभी वे इस स्थिति में नहीं हैं ईश्वर के साथ सीधा संवंध स्थापित कर सकें। मैं उनसे कहता हूं कि वे अपने पांव पर खड़े हो जायें और जव वे सर्वोच्च सत्ता के साथ सीधा संवंध स्थापित कर लें तो मुझे और अधिक समय तक परेशान न करें, मैं फिजूल की परेशानियां मोल लेना नहीं चाहता।"

18 वर्षों तक भगवान श्री रजनीश कहलाने के वाद 26 दिसंवर, 1988 को उन्होंने इस नाम का परित्याग कर दिया और अपने अनुयायियों की एक सभा में घोषणा कर दी कि "इस क्षण से मैं गौतम वुद्ध हो गया हूं, मेरे नाम से भगवान शव्द को पूरी तरह हटा दीजिये। यह एक वहुत कुरूप शव्द है।"

तीन दिन वाद 28 दिसंवर की शाम को उन्होंने अपने अनुयायियों के सामने एक और घोषणा की। उन्होंने कहा, "यद्यपि गौतम वुद्ध ने मेरे भीतर शरण ग्रहण कर ली है तथापि मेरा नाम गौतम वुद्ध नहीं होगा। गौतम वुद्ध की भविष्यवाणी के अनुसार मेरा नाम मैत्रेय वुद्ध होगा। मैत्रेय का अर्थ है—मित्र।"

मैत्रेय की विदाई

दो दिन वाद 30 दिसंवर की शाम को रजनीश ने घोषणा की कि "पिछले दिन मेरे लिए वहुत कठिनाईपूर्ण रहे। मैंने सोचा था कि गौतम वुद्ध वदले हुए जमाने के प्रति सहनशीलता का परिचय देंगे परंतु ऐसा नहीं हो सका। वे चार दिन तक मेरे साथ रहे और उन्होंने यह वात साफ तौर पर समझ ली कि उनके और मेरे वीच समझौते की कोई संभावना नहीं है। अव मैं केवल मैं रह गया हूं। तुम मुझे भले ही वुद्ध कहो, लेकिन इस वुद्ध का गौतम वुद्ध अथवा मैत्रेय वुद्ध से कोई संवंध नहीं है। मैं घोषणा करता हूं कि मेरा नाम श्री रजनीश जोरवा-वुद्ध होना चाहिए जोरवा-वुद्ध का अर्थ है—पदार्थवाद और अध्यात्मकवाद के वीच समवाय और यही मेरी देन है।"

परंतु रजनीश एक सप्ताह से अधिक समय तक जोरवा नहीं रह पाये। 7 जनवरी, 1989 को उन्होंने इस नाम का भी परित्याग कर दिया और घोषणा की कि "....मैं समूची दुनिया का पूरी तरह परित्याग करता हूं। मेरी ओर इंगित करने के लिए श्री रजनीश कहना काफी होगा।"

अपने चरम पर चमका श्री रजनीश की लोकप्रियता का सितारा!

ओशो

एक महीने बाद रजनीश ने एक अन्य नाम धारण कर लिया—ओशो रजनीश। ओशो शब्द का प्रयोग पहले-पहल एका ने अपने गुरु बोधिधर्म के लिए किया था। ओशो का अर्थ है—पूर्ण पुरुष।

कुछ महीने तक रजनीश ओशो रजनीश बने रहे। ऐसा लगता है कि वे अपने माता-पिता द्वारा दिये गये नाम से थक और ऊब गये थे। 15 सितंबर, 1989 को उन्होंने अपने नाम में से रजनीश को पूरी तरह निकालकर फेंक दिया और उनका नया नाम हो गया, केवल 'ओशो'।

मृत्यु की तैयारी

रजनीश गुरु अथवा दैवी पुरुष होने का दावा नहीं करते, फिर भी वे अपने शिष्यों से आत्मसमर्पण की मांग करते हैं। वे कहते हैं, "मैं यह चेष्टा करूंगा कि तुम लय प्राप्त कर सको, लेकिन इसके लिए तुम्हारे सहयोग की आवश्यकता होगी। ....समर्पण भाव में रहो। जो कुछ होता जाये अथवा मैं जो कुछ करता जाऊं, उसके लिए तैयार रहो, भले ही मृत्यु आ जाये, तैयार रहो। ....कुछ हो पाना

तभी संभव है, जब तुम मुझ पर विश्वास कर सको। विश्वास का अर्थ है कि तुम सब कुछ मेरे हाथों में छोड़ दो। भले ही मृत्यु आ जाये, तुम शिकायत नहीं करोगे और अगर तुम इतना कर सको और तुम इस शिविर से वह व्यक्तित्व लेकर नहीं लौटोगे, जिसे लेकर तुम यहां आये थे। ....इस शिविर में पूरे समय अपने भीतर गहरे समर्पण का भाव महसूस करो।"

गुरु, मसीहा और अवतार की भांति रजनीश अपने शिष्यों से मुक्ति अथवा उन्नयन का वादा करते हैं, "मैं तुमसे वादा करता हूं कि तुम यहां से वैसे नहीं लौटोगे, जैसे तुम यहां आये थे।" मेहेर बाबा की भांति वे भी कहते हैं, "मैं शिक्षा देने नहीं, जगाने आया हूं। ....मैं शिक्षक नहीं हूं।"

रजनीश ने इस दावे के बावजूद कि वे शिक्षा नहीं देते, उनकी शिक्षाएं पांच सौ ग्रंथों में भरी पड़ी हैं और जब उनसे इस बात का जिक्र किया जाता है, तब भी वे यही कहते हैं कि वे कोई शिक्षा नहीं देते। वे अपनी शिक्षाओं और दूसरों की शिक्षाओं का भेद इस प्रकार समझाते हैं, "मेरी शिक्षाएं तो उस कांटे की तरह हैं, जिसका इस्तेमाल मैं तुम्हारे भीतर गड़ा हुआ कांटा निकालने के लिए करता हूं। जिस क्षण तुम्हारा कांटा निकल जायेगा, उसी क्षण दोनों कांटे फेंक दिये जायेंगे।

श्री रजनीश के वर्जनाहीन मुक्त यौनाचार के दर्शन ने युवा पीढ़ी को विशेष रूप से प्रभावित किया।

....अपने भीतर दैवी चेतना के लिए स्थान बनाओ, तुम्हारे भीतर कोई भी खाली नहीं है, तुम कबाड़खाना बन गये हो। कुछ जगह बनाओ, दिमाग में जो कुछ है, उसे बाहर फेंक दो। कुछ जगह बनाओ, वह खाली जगह मेजबान बनेगी, दैवी अतिथि के लिए मेजबान।"

संभोग से समाधि

रजनीश ऐसा मानते हैं कि मानवीय व्यक्तित्व को धर्म ने बहुत हानि पहुंचायी है। धर्म ने मनुष्य की यौन भावना का दमन करने की कोशिश की है और वह संभोग को घिनौना, गंदा, पापपूर्ण और अपराधपूर्ण मानता है। रजनीश विवाह की संस्था के प्रति घृणा से भर उठे हैं। वे इसे जैविक दासता मानते हैं। वे अपने अनुयायियों से कहते हैं कि प्रेम को चेतन के स्तर तक ऊंचा उठा दो। उनको यौन प्रतिबंधों पर विश्वास नहीं है। वे कहते हैं, चाहे जिससे प्रेम करो। जब तुम्हें यह छूट होती है, तब तुम स्वतंत्रतापूर्वक प्रेम करते हो और प्रेम तुम्हारे पांव की बेड़ी नहीं बनता। तुम प्रेम में साझेदारी कर सकते हो.... दो व्यक्ति जब एक दूसरे की ऊष्मा का आनंद लेते हैं तो उसमें कोई समस्या ही नहीं रह जाती।

रजनीश का दर्शन मुक्त-प्रेम, मुक्त संभोग का दर्शन है। रजनीश प्रेम को जैविक स्तर से उठाकर चेतना के स्तर पर प्रतिष्ठित कर देते हैं और जब प्रेम उस स्तर पर पहुंच जाता है, तब वह बंधन नहीं रह जाता और चेतना की वह अवस्था आध्यात्मिक प्रेम की मनोभूमि तैयार कर देती है। आध्यात्मिक प्रेम दो व्यक्तियों के बीच नहीं होता, वह व्यक्ति और सर्वोच्च सत्ता के बीच होता है—अंश और पूर्ण के बीच, बिंदु और सागर के बीच। इस स्थिति में संभोग समाधि की ओर ले जाता है। यह प्रेम की भावना का उन्नयन (ऊंचा उठाना) है।

मुक्ति: आदि और अंत

रजनीश की शिक्षाओं में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान ध्यान का है, जिसके बारे में वे कहते हैं कि "ध्यान का आदि (आरंभ) और अंत (लक्ष्य) दोनों मुक्ति है। यह मुक्ति की आत्म-उन्नयन की कुंजी है।" उन्होंने ध्यान के साथ सक्रियता को जोड़ दिया है, क्योंकि उनकी दृष्टि में ध्यान अनिवार्यतः ऊर्जा की प्रक्रिया है।

उनकी दृष्टि में, "ध्यान चिंतन अथवा एकाग्रता नहीं है। चिंतन तो महज सोचने और विचारों को शुद्ध करने की प्रक्रिया है। ....ध्यान का अपना ही आनंद है और यह आनंद भोजन, संभोग, वस्त्र आदि किसी भी वस्तु और सुख से बढ़कर है। यह अंतिम आनंद है, परंतु ध्यान अंतःकरण की प्रक्रिया है। इसमें सोचने को कुछ नहीं रह जाता। इस अवस्था में शुद्ध परम-तत्त्व ही शेष रह जाता है। ध्यान सोचने की प्रक्रिया नहीं है, वह किसी भी स्थिति में चिंतन नहीं है।"

रजनीश ने ध्यान की अनेक पद्धतियों का विकास किया है और उन सब के द्वारा साधक की समची वेदना अचेतन मन से चेतन मन के तल पर उभर आती है।

श्री रजनीश की गतिविधियों ने अमरीकी समाज को इस कदर त्रस्त कर डाला कि वह कैसे भी हो रजनीश से छुटकारा पाने के बहाने ढूंढ़ने लगा। आखिर विभिन्न आरोपों में रजनीश को गिरफ्तार कर ही लिया गया। बाद में श्री रजनीश पुनः भारत में अपने पूना स्थित आश्रम में लौट आये।

रजनीश का मत है कि जब वेदना चेतन के तल पर आ जाती है, तब वह नष्ट हो जाती है। वे ध्यान को एक प्रकार की मृत्यु मानते हैं। "अतीत के प्रति मृत्यु, अहं की पूर्ण मृत्यु।" ध्यान अनंत के साथ एकाकार हो जाता है और वह समूचे व्यक्तित्व का रूपांतरण कर डालता है।

रजनीश ने अनेक प्रकार की ध्यान पद्धतियों का विकास किया है, जिनमें से वे पांच ध्यान पद्धतियों पर अधिक बल देते हैं—(1) डायनेमिक (सक्रिय) ध्यान, जिसकी अवधि एक घंटा है और चार अवस्थाएं—गहरा श्वास भरना, शक्ति को मुक्त छोड़ देना जिसमें कि शरीर जो कुछ करना चाहे कर सके—उछल-कूद अथवा हू, हू, हू चिल्लाना और मन और शरीर में जो कुछ हो रहा है, उसको साक्षीभाव से देखना, (2) कुंडलिनी ध्यान। यह भी एक घंटा चलता है और इसकी भी चार अवस्थाएं हैं—शरीर को हिलाना, नाचना, साक्षीभाव और निश्चेष्ट होकर लेट जाना, (3) नो-माइंड ध्यान, यह दो घंटे का ध्यान है और इसकी दो अवस्थाएं हैं। साधक एक घंटे तक एकांत में बातें करता चला जाता है और अपने दिमाग का सारा कचरा निकाल फेंकता है। उसके बाद एक घंटा खामोशी के साथ आंखें बंद करके उस सब को साक्षीभाव से देखता रहता है, जो उसके तन और मन में हो रहा है, (4) बॉर्न अगेन मेडिटेशन। समय दो घंटा और दो अवस्थाएं। पहले एक घंटे में साधक शिशु की भांति व्यवहार करता है और दूसरे घंटे में साक्षी बन जाता है। (5) मिस्टिक रोज ध्यान। रजनीश (ओशो) ने यह ध्यान पद्धति अप्रैल, 1988 में खोजी और इसके बारे में वे कहते हैं, "गौतम बुद्ध की विपश्यना ध्यान पद्धति के बाद पिछले पच्चीस सौ वर्षों में ध्यान के क्षेत्र में यह सबसे बड़ी खोज है। ....मैंने अनेक ध्यान पद्धतियों का आविष्कार किया है, परंतु संभवतः यह सबसे अधिक सारभूत

और बुनियादी है। यह समूचे विश्व में व्याप्त हो सकती है।" इस ध्यान की अवधि 21 दिन है—सात दिन तक प्रतिदिन तीन घंटे हंसना, अगले सात दिन प्रतिदिन तीन घंटे रोना, आंसू गिराना और अंतिम सात दिन प्रतिदिन तीन घंटे साक्षीभाव अर्थात् सब को देखना, जो साधक के अपने भीतर घटित हो रहा है। मिस्टिक रोज मैडीटेशन-कार्यक्रम के निदेशक का दावा है कि "यदि इस पृथ्वी पर प्रत्येक व्यक्ति ओशो की मिस्टिक रोज पद्धति से ध्यान करे तो समस्त संघर्ष और युद्ध तुरंत समाप्त हो जायेगा।"

ओशो दिवंगत

19 जनवरी, 1990 को सायं 5.30 पर रजनीश ने अपने पुणे आश्रम में अपनी जीवन डोर समेट ली। उनकी दार्शनिकता जीवन के अंतिम क्षण तक ज्यों की त्यों बनी रही। उनके निजी चिकित्सक ने जब उनसे यह पूछा कि क्या उन्हें कृत्रिम श्वास दिलाने की तैयारी की जाये तो ओशो ने उत्तर दिया, "नहीं। यदि मेरी मृत्यु हो जाती है तो पीड़ा से स्वयं मुक्ति मिल जायेगी।"

सच्ची वेदांती दृष्टि यही है—मृत्यु पीड़ा से मुक्ति है। वेदांत कहता है कि यह जगत पीड़ास्वरूप ही है। मृत्यु सच्चे योगी को पीड़ा से मुक्त कर देती है, क्योंकि उसके भीतर जगत की कामना नहीं रहती और वह आत्मस्थ हो जाता है। वह जन्म और मृत्यु के बंधन अर्थात् आवागमन के चक्र से मुक्त, जीवनमुक्त हो जाता है।

जब उनके चिकित्सक को ऐसा लगा कि ओशो का जीवन तेजी से समाप्त हो रहा है तो उसने उनसे कहा, "ओशो, मुझे ऐसा लगता है कि अब सब कुछ समाप्त हो रहा है।" यह सुनकर रजनीश ने शांत भाव से स्वीकृति में सिर हिलाया और आंखें बंद कर लीं। उनकी धीमी नब्ज़ थोड़ी देर तक चलती रही और उसके बाद लुप्त हो गयी। ■■

महर्षि महेश योगी और भावातीत ध्यान

"मैं एक ऐसी पद्धति लेकर हिमालय से उतरा, जो मनुष्य के मन और हृदय को उन ऊंचाइयों तक ले जा सकती है, जहां वास्तविक ज्ञान और वास्तविक मानवीय प्रकृति को पूरी तरह आत्मसात किया जा सकता है। मैं अपनी इस पद्धति को ध्यान कहता हूं, परंतु वास्तव में यह भीतर की खोज का मार्ग है। इस पद्धति द्वारा मनुष्य अपने अस्तित्व की उन अंतर्तम गहराइयों में पहुंच सकता है, जिनमें जीवन, सार-तत्त्व और समूचे अस्तित्व अर्थात् विवेक, सृजनशीलता, शांति और प्रसन्नता का निवास है। ....ध्यान शब्द नया नहीं है। इसके लाभ भी कुछ नये नहीं हैं। वास्तव में ध्यान की यह पद्धति पिछली कुछ शताब्दियों में मानव की दृष्टि से ओझल हो गयी थी और इसके अभाव में मनुष्य जाति कष्ट पा रही थी।"

इस प्रकार महर्षि महेश योगी ने यह बात साफ कर दी है कि उनके द्वारा प्रतिपादित भावातीत ध्यान की पद्धति प्रमुखतः आत्मा, ईश्वर अथवा मनुष्य द्वारा अपनी इन्द्रियों से अनुभव किये जाने वाले जगत् के पीछे छिपी हुई सर्वोच्च सत्ता की खोज का साधन नहीं है। भावातीत ध्यान आत्मा की चेतना के उस बुनियादी स्तर की खोज की प्रक्रिया है, जिससे कि समस्त चेतना का उदय होता है और वह चेतना जगत में विहार तथा विचरण करती है और अंततः उसी में लौटकर विलीन हो जाती है, जो समस्त संभावनाओं का क्षेत्र है।

महर्षि महेश योगी का जन्म जबलपुर में हुआ था। उनका बचपन का नाम महेश श्रीवास्तव था। वे काफी समय तक हिमालय में बद्रिकाश्रम, ज्योतिर्मठ के जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती के साथ रहे। वे कहते हैं कि स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती उनके आध्यात्मिक गुरु थे और उन्होंने भावातीत ध्यान की पद्धति उनसे ही सीखी थी। स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती के देहांत के पश्चात् महेश श्रीवास्तव महेश योगी बन गये और उन्होंने समाज के आध्यात्मिक स्तर को शुद्ध करने तथा ऊंचा उठाने का काम हाथ में ले लिया।

वे दक्षिण भारतीय राज्यों में काफी समय घूमते रहे। उस समय तक वे भावातीत ध्यान का प्रचार नहीं कर रहे थे, अतः अपनी दक्षिण यात्रा के दौरान उन्होंने अनेक स्थानों पर आध्यात्मिक विकास केन्द्रों की स्थापना की। सन् 1957 के अंत तक उन्होंने दक्षिण भारत के लोकमानस में अपने लिए जगह बना ली और

भावातीत ध्यान पद्धति के उन्नायक महर्षि महेश योगी। पृष्ठभूमि में हैं उनके आध्यात्मिक गुरु स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती।

उस वर्ष दिसंवर में आध्यात्मिक पुनरुत्थान आंदोलन शुरू किया, जिसका उद्घाटन उन्होंने स्वयं किया। आरंभ से ही महेश योगी व्यवस्थित और संगठित रीति से कार्य करते तथा विचारों के प्रचार में उन्हें समारोह और तड़क-भड़क के महत्त्व का बोध था! उनके मन में यह चेतना जाग गयी थी कि उनका जन्म मानव जाति के हित के लिए हुआ है। जनवरी, 1960 में वे पश्चिमी देशों की यात्रा पर निकले। भावातीत ध्यान शव्द का आविष्कार उन्होंने इसी समय अपनी अमरीका यात्रा के दौरान किया और उसमें से समस्त धार्मिक कर्मकाण्ड और आध्यात्मिक रहस्यवाद को निकालकर उसका लौकिकीकरण कर डाला। उन्होंने भावातीत ध्यान को मन के स्तर पर सीमित कर दिया और उसे मानवीय चेतना के विस्तार की एक वैकल्पिक पद्धति के रूप में पश्चिमी जगत के सम्मुख पेश किया।

उन्होंने पश्चिमी जगत में मनोविस्तार के विभिन्न प्रयोगों और उसके लिए चरस, गांजा और एल.एस.डी. जैसे मादक द्रव्यों के प्रयोग का गहरायी से अध्ययन करके भावातीत ध्यान की पद्धति का विकास किया। कुछ भारतीय पंडितों ने उन्हें महर्षि की पदवी प्रदान कर दी थी, अतः वे महर्षि महेश योगी वन गये। महर्षि ने पश्चिमी देशों के अपने श्रोताओं को वताया कि मनोविस्तार के लिए प्रयोग किये जाने वाले रासायनिक द्रव्य अंततः निस्सीम चेतना और समस्त शक्तियों के आदि स्रोत के द्वार खोलने में वाधक सिद्ध होंगे। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने भावातीत ध्यान पद्धति विकल्प के रूप में पेश की।

पश्चिमी देशों के लोग, विशेषतः अमरीका के समझदार लोग इन रासायनिक द्रव्यों के हानिकारक प्रभावों के बारे में स्वयं भी चिंतित हो उठे थे, परंतु

महर्षि महेश योगी और भावातीत ध्यान

"मैं एक ऐसी पद्धति लेकर हिमालय से उतरा, जो मनुष्य के मन और हृदय को उन ऊंचाइयों तक ले जा सकती है, जहां वास्तविक ज्ञान और वास्तविक मानवीय प्रकृति को पूरी तरह आत्मसात किया जा सकता है। मैं अपनी इस पद्धति को ध्यान कहता हूं, परंतु वास्तव में यह भीतर की खोज का मार्ग है। इस पद्धति द्वारा मनुष्य अपने अस्तित्व की उन अंतर्तम गहराइयों में पहुंच सकता है, जिनमें जीवन, सार-तत्त्व और समूचे अस्तित्व अर्थात् विवेक, सृजनशीलता, शांति और प्रसन्नता का निवास है। ....ध्यान शब्द नया नहीं है। इसके लाभ भी कुछ नये नहीं हैं। वास्तव में ध्यान की यह पद्धति पिछली कुछ शताब्दियों में मानव की दृष्टि से ओझल हो गयी थी और इसके अभाव में मनुष्य जाति कष्ट पा रही थी।"

इस प्रकार महर्षि महेश योगी ने यह बात साफ कर दी है कि उनके द्वारा प्रतिपादित भावातीत ध्यान की पद्धति प्रमुखतः आत्मा, ईश्वर अथवा मनुष्य द्वारा अपनी इन्द्रियों से अनुभव किये जाने वाले जगत के पीछे छिपी हुई सर्वोच्च सत्ता की खोज का साधन नहीं है। भावातीत ध्यान आत्मा की चेतना के उस बुनियादी स्तर की खोज की प्रक्रिया है, जिससे कि समस्त चेतना का उदय होता है और वह चेतना जगत में विहार तथा विचरण करती है और अंततः उसी में लौटकर विलीन हो जाती है, जो समस्त संभावनाओं का क्षेत्र है।

महर्षि महेश योगी का जन्म जबलपुर में हुआ था। उनका बचपन का नाम महेश श्रीवास्तव था। वे काफी समय तक हिमालय में बद्रिकाश्रम, ज्योतिर्मठ के जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती के साथ रहे। वे कहते हैं कि स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती उनके आध्यात्मिक गुरु थे और उन्होंने भावातीत ध्यान की पद्धति उनसे ही सीखी थी। स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती के देहांत के पश्चात् महेश श्रीवास्तव महेश योगी बन गये और उन्होंने समाज के आध्यात्मिक स्तर को शुद्ध करने तथा ऊंचा उठाने का काम हाथ में ले लिया।

वे दक्षिण भारतीय राज्यों में काफी समय घूमते रहे। उस समय तक वे भावातीत ध्यान का प्रचार नहीं कर रहे थे, अतः अपनी दक्षिण यात्रा के दौरान उन्होंने अनेक स्थानों पर आध्यात्मिक विकास केन्द्रों की स्थापना की। सन् 1957 के अंत तक उन्होंने दक्षिण भारत के लोकमानस में अपने लिए जगह बना ली और

भावातीत ध्यान पद्धति के उन्नायक महर्षि महेश योगी। पृष्ठभूमि में हैं उनके आध्यात्मिक गुरु स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती।

उस वर्ष दिसंबर में आध्यात्मिक पुनरुत्थान आंदोलन शुरू किया, जिसका उद्घाटन उन्होंने स्वयं किया। आरंभ से ही महेश योगी व्यवस्थित और संगठित रीति से कार्य करते तथा विचारों के प्रचार में उन्हें समारोह और तड़क-भड़क के महत्त्व का बोध था! उनके मन में यह चेतना जाग गयी थी कि उनका जन्म मानव जाति के हित के लिए हुआ है। जनवरी, 1960 में वे पश्चिमी देशों की यात्रा पर निकले। भावातीत ध्यान शब्द का आविष्कार उन्होंने इसी समय अपनी अमरीका यात्रा के दौरान किया और उसमें से समस्त धार्मिक कर्मकाण्ड और आध्यात्मिक रहस्यवाद को निकालकर उसका लौकिकीकरण कर डाला। उन्होंने भावातीत ध्यान को मन के स्तर पर सीमित कर दिया और उसे मानवीय चेतना के विस्तार की एक वैकल्पिक पद्धति के रूप में पश्चिमी जगत के सम्मुख पेश किया।

उन्होंने पश्चिमी जगत में मनोविस्तार के विभिन्न प्रयोगों और उसके लिए चरस, गांजा और एल.एस.डी. जैसे मादक द्रव्यों के प्रयोग का गहरायी से अध्ययन करके भावातीत ध्यान की पद्धति का विकास किया। कुछ भारतीय पंडितों ने उन्हें महर्षि की पदवी प्रदान कर दी थी, अतः वे महर्षि महेश योगी बन गये। महर्षि ने पश्चिमी देशों के अपने श्रोताओं को बताया कि मनोविस्तार के लिए प्रयोग किये जाने वाले रासायनिक द्रव्य अंततः निस्सीम चेतना और समस्त शक्तियों के आदि स्रोत के द्वार खोलने में बाधक सिद्ध होंगे। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने भावातीत ध्यान पद्धति विकल्प के रूप में पेश की।

पश्चिमी देशों के लोग, विशेषतः अमरीका के समझदार लोग इन रासायनिक द्रव्यों के हानिकारक प्रभावों के बारे में स्वयं भी चिंतित हो उठे थे, परंतु

दूसरी ओर वे एक नितांत पदार्थवादी सभ्यता के तनावों और दबावों से बच निकलने के लिए हताशापूर्ण प्रयास कर रहे थे। उन दिनों पश्चिमी देशों में इंग्लैंड के बीटिल्स गायकों और संगीतकारों की टोली बहुत लोकप्रिय हो गयी थी, इसका कारण केवल यह था कि अपने गैर-पारंपरिक संगीत के द्वारा वे लोगों के तनावों और दबावों को ढीला करने में कुछ सीमा तक सहायक सिद्ध हो रहे थे, लेकिन इसी समय टोली में से कुछ लोग अपने ही तनावों से मुक्त होने के लिए चरस और एल.एस.डी. आदि नशों के शिकार हो गये। जब उन्होंने यह सुना कि महर्षि महेश योगी ने एक ऐसी ध्यान पद्धति खोज निकाली है, जिसके द्वारा मादक द्रव्यों के बिना ही मन के तनावों पर विजय पायी जा सकती है तो वे महर्षि की ओर दौड़े और उन्होंने भावातीत ध्यान सीखना शुरू कर दिया। इसी समय हॉलीवुड की प्रसिद्ध सिने तारिका मिया फारो ने महर्षि को गुरु के रूप में स्वीकार कर लिया।

इस सबसे महर्षि और उनकी भावातीत ध्यान पद्धति को समूचे विश्व में असाधारण ख्याति प्राप्त हो गयी। शीघ्र ही पश्चिम के लोग उनके पीछे भागने लगे और उनके पास रातों-रात दौलत का ढेर लग गया। बीटिल्स और मिया फारो उनके पीछे-पीछे भारत आ पहुंचे और उनके ऋषिकेश आश्रम में ठहरे।

राष्ट्रों की अपराजयेता

पिछले 30 वर्षों में महर्षि महेश योगी ने भावातीत ध्यान के क्षेत्र में असंख्य प्रयोग किये और अनेक मंजिलें पार कर लीं। उन्होंने सबसे बडी बुद्धिमानी यह की कि वे आत्मा-परमात्मा के चक्कर में उलझे बिना चेतना के मानसिक स्तर पर टिके रहे। अपने इस कार्य में उन्हें अनेक पश्चिमी मनोविज्ञानियों और चिकित्सा-शास्त्रियों का सहयोग प्राप्त हुआ। वैज्ञानिकों ने परीक्षणों के आधार पर यह प्रमाणित कर दिया कि भावातीत ध्यान मनुष्य के मन को पूरी तरह आराम पहुंचाता है, उसमें जीवंतता उत्पन्न करता है और उसे सुबद्धता तथा सृजनशीलता प्रदान करता है। वह मनुष्य की ग्रहण शक्ति बढ़ाता है और उसकी सृष्टि तथा ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता का विस्तार कर देता है। भावातीत ध्यान से बुद्धि, ज्ञान और शैक्षणिक योग्यता में वृद्धि होती है। मनोविज्ञानियों ने यह स्वीकार किया है कि भावातीत ध्यान मनुष्य के संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास में बहुत मदद करता है।

सन् 1975 में महर्षि महेश योगी ने स्विट्जरलैंड में मेरु-महर्षि युरोपियन रिसर्च यूनिवर्सिटी स्थापित की, जिसका प्रयोजन समस्त शक्तियों के आदि स्रोत—चेतना के क्षेत्र में शोध करना है। अनेक अमरीकी विश्वविद्यालयों ने भावातीत ध्यान को अपने पाठ्यक्रमों में शामिल किया है। जेलों, श्रमिक शिविरों, कारखानों, खेतों, कार्यालयों तथा खेल संस्थानों में सामूहिक भावातील ध्यान के प्रयोग किये गये और प्रत्येक क्षेत्र में अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुए। अमरीका में ही नहीं अनेक युरोपीय राज्यों और रूस में भी भावातीत ध्यान को विद्यालयों के पाठ्यक्रमों तथा सुधार-गृहों के कार्यक्रमों में शामिल किया गया।

भावातीत ज्ञान के दर्शन के प्रतिपादक महर्षि महेश योगी द्वारा 150 देशों में लगभग 4,000 ध्यान-केन्द्रों की स्थापना की गयी है।

शीघ्र ही महर्षि संसार के सबसे अधिक धनाढ्य व्यक्ति बन गये। महर्षि ने अब तक भावातीत ध्यान के लगभग 25 हजार शिक्षक निर्माण किये हैं, जो विश्व के 150 देशों में कोई चार हजार केन्द्रों का संचालन करते हैं। इन केन्द्रों के पास विशाल भवन, पुस्तकालय और वैज्ञानिक उपकरण हैं, जिनका मूल्य अरबों डॉलर में आंका जाता है। उन्होंने दो विश्वविद्यालयों की स्थापना की है। स्विट्जरलैंड में मेरु और अमरीका के आयोवा राज्य के फेयरफील्ड नगर में 'महर्षि इंटरनेशनल यूनिवर्सिटी'। उन्होंने संसार में तीन सबसे आधुनिक प्रिंटिंग प्रेस कायम किये हैं—न्यूयार्क के लिविंग्स्टन में 'द एज ऑफ इनलाइटमेंट प्रेस', पश्चिमी जर्मनी में मेरु प्रेस और तीसरा प्रेस अपने निवास स्थान जबलपुर में। जबलपुर में महर्षि इंस्टीट्यूट ऑफ क्रियेटिव इंटेलीजेंस का मुख्यालय भी है।

महर्षि ने अपने विश्व-साम्राज्य की तीन अंतर्राष्ट्रीय राजधानियां घोषित की हैं—स्विट्जरलैंड में सीलिसबर्ग, न्यूयार्क में सॉउथ फाल्सबर्ग और ऋषिकेश में शंकराचार्य नगर। इन सब स्थानों पर बड़ी-बड़ी जायदादें खरीदी गयी हैं और विशाल भवनों का निर्माण हुआ है। नई दिल्ली के पास नोएडा क्षेत्र में बहुत तेजी से महर्षि-नगर उभर रहा है, जहां दो विश्वविद्यालयों की स्थापना की गयी है—आयुर्वेद विश्वविद्यालय और वैदिक विज्ञान विश्वविद्यालय। दिल्ली से मदुरै तक उद्योगों की एक शृंखला खड़ी की गयी है, जिनका उत्पादन सिद्धा-प्रोडक्ट्स के नाम से बाजारों में मिलता है।

महर्षि के पास अनेक विमान, हैलीकॉप्टर, बड़ी-बड़ी कारें और जलपोत हैं जिनका दाम करोड़ों डॉलर कूता गया है। उन्होंने इंग्लैंड में महर्षि इंटरनेशनल कॉलेज के लिए वहां की महारानी एलिजाबेथ द्वितीय से बकिंघम का

विक्टोरिया-युगीन शाही महल मौंटमोर-टावर्स लगभग 25 करोड़ पौंड में खरीदा है।

आचार्य रजनीश ने दावा किया है कि सन् 1984 में फिलिपीन्स के तत्कालीन राष्ट्रपति फर्डीनांड मार्कोस ने उनसे भावातीत ध्यान के शिक्षकों की सेवाएं प्राप्त की थीं, जिससे कि देश पर उसका नियंत्रण बना रह सके। मार्कोस का यह लक्ष्य तो सिद्ध नहीं हुआ परंतु उससे महर्षि को करोड़ों डॉलर की फीस अवश्य प्राप्त हो गयी। सन् 1989 में रूस के संस्कृति मंत्रालय ने सन् 1988 के भूकंप में ध्वस्त हुए आर्मीनियाई नगर की भूमि पर एक भविष्योन्मुखी गुंबदाकार बस्ती बसाने की अनुमति दी है, जिसमें भावातीत ध्यान के द्वारा भावी भूकंपों को रोकने का कार्य किया जायेगा।

भावातीत ध्यान-सिद्धि कार्यक्रम

महर्षि महेश योगी ने एक नये कार्यक्रम का आविष्कार किया, जिसे उन्होंने नाम दिया—भावातीत ध्यान-सिद्धि कार्यक्रम। वे कहते हैं कि "उसका उद्देश्य व्यक्ति की संपूर्ण क्षमता को क्षण भर में उजागर करना और उसके माध्यम से पूरे राष्ट्र की संपूर्ण क्षमता का द्वार खोलना है।" उनका दावा है कि "यह संपूर्ण मानव जाति को उसके परस्पर-विरोधी गुणों और मूल्यों के बावजूद प्रसन्नता और परिपूर्णता की दिशा में ले जाने के लिए सुव्यवस्था स्थापित करने वाले विश्वजनीन प्रयास के लिए एक ब्रह्मांडीय योजना है। ....हम एक ऐसी वस्तु के लिए प्रयास कर रहे हैं, जिसका जीवन में बुनियादी महत्त्व है। विविधताएं और भिन्नताएं बुनियादी नहीं हैं। पेड़ की एक हजार शाखाएं हो सकती हैं, एक हजार पत्तियां, एक हजार फूल और 10 हजार फल भी, परंतु हमारा प्रयोजन उन सबसे नहीं वरन् उस बुनियादी जीवन-रस से है, जो समूचे वृक्ष में प्रवाहित रहता है और जो एक ही प्रकार का है, हजार प्रकार का नहीं। यह जीवन-रस समूची विविधता के बीच उस एकता का द्योतक है, जो समूचे वृक्ष में विद्यमान है। ....उसका प्रयोजन समाज में उच्चतर चेतना का संरक्षण और पोषण तथा सृजन और पोषण करना है। भावातीत ध्यान कार्यक्रम का भी यही प्रयोजन है। अब यह प्रयोजन भावातीत ध्यान-सिद्धि कार्यक्रम के माध्यम से हजारों गुणा प्रभावशाली बन गया है। इस नये कार्यक्रम के दौरान लोगों को भावातीत चेतना के स्तर से कार्य करने की क्षमता प्राप्त हो जाती है। भावातीत चेतना निस्सीम चेतना है और भावातीत ध्यान-सिद्धि कार्यक्रम लोगों के मस्तिष्क को इस प्रकार संस्कारित कर देता है कि वह निस्सीम चेतना के स्तरों पर कार्य करने लगता है।"

महर्षि का दावा है कि भावातीत ध्यान समाज में तनावों और सामंजस्य को कम कर देगा आ सामंजस्य तथा एकता के मूल्य और भाव को प्रोत्साहन देगा।

महर्षि का ह दावा एक सीमा तक सही है। चेतना के विस्तार से मनुष्य का चरित्र निश्चय सुधर जाता है और यह बात सर्वविदित है कि प्रसन्नता और

शांति का मूल स्रोत मानवीय चरित्र ही है। महर्षि के विचार से प्रगति में दो मूल्य निहित हैं—भौतिक मूल्य और बौद्धिक मूल्य। वे कहते हैं कि भावातीत ध्यान मन और शरीर अथवा बुद्धि और काया के बीच सामंजस्य स्थापित करता है।

भावातीत ध्यान मानवीय चेतना को सशक्त बनाता है। महर्षि कहते हैं, "व्यक्ति की चेतना वह क्षेत्र है, जहां जीवन की समग्रता निवास करती है। शरीर, मन और मन के समस्त विभिन्न सूक्ष्मतर मूल्य, जिन्हें बुद्धि और अहं इत्यादि नामों से पुकारा जाता है, सब के सब चेतना के उस ढांचे में निवास करते हैं, जिसे आत्मा कहा जा सकता है। यदि हम चेतना के उस सूक्ष्म स्तर पर जीना सीख लें तो हमें स्वयं यह ज्ञान हो जायेगा कि समूची सृष्टि की गतिविधि का किस प्रकार नियमन किया जाता है। तब हम सृष्टि चेतना के उस स्तर से, जिसे हम चेतना की सर्वसामान्य अवस्था कहते हैं, पदार्थ और चिंतन के समूचे क्षेत्र का अपनी इच्छा के अनुसार नियमन कर सकते हैं।"

महर्षि का दावा है कि भावातीत ध्यान मनुष्य की छिपी हुई प्रतिभा को उजागर कर देता है। वे कहते हैं, "प्रत्येक व्यक्ति के भीतर सक्रियता की अनंत क्षमता होता है परंतु उस विशाल भंडार को आधुनिक शिक्षा प्रणालियां सक्रिय और सजग नहीं बना पातीं। मनुष्य की प्रतिभा उसकी चेतना के मौन, अर्थात् मन की उस सूक्ष्म अवस्था में छिपी रहती है, जहां से प्रत्येक विचार का उदय होता है। ....संसार में जितनी भी खोजें हुई हैं, वे चेतना के इसी ढंके हुए स्तर से उदय हुई हैं। सफल व्यक्तियों की सफलता का गुप्त साधन यही चेतना है। यह वह महासागर है, जिसमें ज्ञान की समस्त धाराएं विलीन होती हैं और चेतना के इस अत्यंत कोमल स्तर से समूची सृष्टि का उदय होता है। भावातीत ध्यान के बारे में यह दावा किया गया है कि उसके द्वारा मनुष्य की इस प्रतिभा पर जड़ा हुआ ताला खुल जाता है।

महर्षि महेश योगी पूर्वी जगत के प्राचीन ज्ञान और पश्चिमी जगत की वैज्ञानिक प्रगति तथा दौलत के बीच पुल बांधने की कोशिश कर रहे हैं। वे बहुत यथार्थवादी हैं। वे मानवीय मन के गुरु हैं, वे यह दावा नहीं करते कि वे मोक्ष दिला देंगे। उनकी चिंता का मुख्य विषय मनुष्य की चेतना को उन बंधनों से मुक्त करना है, जिनमें वह जकड़ी हुई है। यह मुक्त चेतना ही मनुष्य के मन का विस्तार कर सकती है और उसके सम्मुख प्रकृति के नियमों और वरदानों के स्रोतों का रहस्य खोल सकती है। भावातीत ध्यान का लक्ष्य मनुष्य के मन से जगत का वह भाव नष्ट करना नहीं है, जिसे वैदिक धर्मग्रंथ अविद्या, मिथ्या अथवा माया कहते हैं वरन् उसका लक्ष्य एक श्रेष्ठतर जगत का निर्माण है। ■■

श्री भक्तिवेदांत स्वामी

"हम सब लोगों ने यह अनुभव प्राप्त किया है कि श्री चैतन्य महाप्रभु की शिष्य परंपरा में आध्यात्मिक गुरु किस प्रकार प्रकट होते हैं। हमारे गुरु ने हमें यह कहकर धोखा नहीं दिया कि "मैं ईश्वर हूं, मैं भगवान हूं।" इसके विपरीत उन्होंने यह सिद्ध किया कि वे प्रभु के सेवक हैं और हमें यह पहचानना सिखलाया कि वास्तव में ईश्वर कौन है, हम कौन हैं और हम अपने घर अर्थात् कृष्ण की ओर किस प्रकार लौट सकते हैं? श्री प्रभुपाद ने हमें घर-वापसी का टिकट दे दिया है, इसके लिए हम उनके ऋणी हैं।"

"श्री प्रभुपाद यायावर तीर्थ-पुरुष हैं, वे स्वयं जहां-जहां गये, उन्होंने उस प्रत्येक स्थान को तीर्थ बना दिया। उन्होंने हमें कृष्ण के नाम और मूर्तियों, कृष्ण-प्रसाद और अपनी पुस्तकों के रूप में साक्षात् कृष्ण ही प्रदान कर दिये। उन्होंने अंधकार में प्रकाश फैलाया, उन्होंने हमें वह दृष्टि दी, जिसके द्वारा हम शुद्ध और अशुद्ध के बीच भेद करना सीख पाये। सच तो यह है कि उन्होंने हमें यह बताया कि "इस नश्वर जगत की प्रत्येक वस्तु असत्य है, केवल कृष्ण और उनसे जुड़ी हुई वस्तुयें ही सत्य हैं। ....तीनों लोगों में कृष्ण से अधिक श्रेष्ठ हो भी क्या सकता है?"

स्विट्जरलैंड में बसे गोकुलधाम के निवासी रोहिणी-सुत दास ने अपने गुरु आचार्य भक्तिवेदांत स्वामी को उपर्युक्त शब्दों में श्रद्धांजलि अर्पित की है। यह श्रद्धांजलि सहज ही हमारे मन में आचार्य भक्तिवेदांत स्वामी के जीवन और कार्य के बारे में जिज्ञासा उत्पन्न करती है।

अभयचरण डे

भक्तिवेदांत स्वामी का जन्म कलकत्ता में 1 सितंबर, 1896 को हुआ था। उनका बचपन का नाम अभयचरण डे था। उनके पिता गौरमोहन डे भावनाशील वैष्णव थे और ऐसी भावनाशील उनकी मां रजनी थीं। वे लोग अपने घर पर तथा घर के सामने सड़क के उस पार राधा-गोविन्द मंदिर में भगवान श्री कृष्ण की उपासना करते थे। उनका घर 151, हरिसन रोड पर था। गौरमोहन डे आचार-विचार के मामले में कट्टर वैष्णव थे। वे शुद्ध शाकाहारी थे और चाय तथा कॉफी तक नहीं लेते थे। अंडे और मांस का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। वे जब

श्री भक्तिसिद्धांत सरस्वती, जिनके आदेश पर श्री अभयचरण डे ने स्वामी चैतन्य महाप्रभु का भक्ति-संदेश जन-जन तक फैलाने का बीड़ा उठाया।

तक स्नान और भगवान कृष्ण की पूजा न कर लेते, तब कुछ नहीं खाते थे। रात को सोने से पहले वे अपनी माला पर भगवान के नाम का स्मरण करके, भगवान की पूजा करके और श्रीमद्‌भागवत अथवा श्री चैतन्य चरित्रामृत में से कुछ श्लोकों का पाठ अवश्य करते थे।

उस जमाने में हिन्दुओं में यह एक आम रिवाज था कि बच्चे का जन्म होने पर किसी विद्वान ज्योतिषी से उसकी जन्म-कुंडली बनवायी जाती और ज्योतिषी जन्म-कुंडली के साथ-साथ बालक के भविष्य के बारे में भविष्यवाणियां भी करता। अभयचरण डे के माता-पिता ने भी बालक के जन्म पर एक योग्य ज्योतिषी की सेवाएं प्राप्त कीं, जिसने अभय की जन्मपत्री बनायी और यह भविष्यवाणी की कि वह 70 वर्ष की आयु में विदेश जायेगा, कृष्ण-भक्ति का प्रचार करेगा और संसार के भिन्न-भिन्न देशों में भगवान कृष्ण के 108 मंदिर स्थापित करेगा।

कृष्ण-भक्ति

अभयचरण डे को कृष्ण की पूजा की परंपरा उत्तराधिकार में प्राप्त हुई थी। बालक जैसे-जैसे बड़ा हुआ, वैसे-वैसे उसका चित्त कृष्ण-गाथाओं और कृष्ण-लीलाओं में डूबता चला गया और कृष्ण की मूर्ति की उपासना के फलस्वरूप वह भगवान कृष्ण के अत्यंत सुंदर रूप पर मोहित हो गया। छः वर्ष के अभय ने माता-पिता से अपने लिए कृष्ण की मूर्ति मांगी और उसके पिता ने राधा-कृष्ण का एक सुंदर-सा जोड़ा खरीदकर उसे भेंट कर दिया। अभय बचपन से ही घर में पिता को और राधा-गोविन्द मंदिर में पुजारी को मूर्तियों की पूजा करते हुए देखता था, जब उसे अपने इष्ट देव की मूर्तियां प्राप्त हो गयीं तो उसने भक्ति भाव और विधि-विधानपूर्वक उनकी पूजा आरंभ कर दी।

अभय की मां के मन में इच्छा थी कि उनका बेटा लंदन जाकर बैरिस्टर की डिग्री प्राप्त करे, लेकिन उसके पिता ने उनकी प्रार्थना यह कहकर अस्वीकार कर

स्वप्न में गुरु से संन्यास का आदेश पाकर श्री अभयचरण डे 'अभयचरणारविंद भक्तिवेदांत स्वामी' हो गये और उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ (इस्कॉन) की स्थापना की।

दी कि अभय के लंदन जाने से उसके वैष्णव संस्कारों को धक्का लगेगा, क्योंकि वहा उसे पश्चिमी ढंग की पोशाक पहननी होगी और क्योंकि उसकी उम्र कच्ची है, इस कारण यह भी संभव है कि वह मांस खाने लगे, शराब पीना शुरू कर दे और स्त्रियों के पीछे चक्कर काटने लगे। अत: लंदन भेजने के बजाय अभय को एक स्थानीय कॉलेज में भर्ती करा दिया गया, जहां से उसने स्नातक की परीक्षा पास की। कॉलेज की पढ़ाई समाप्त होने के बाद उसके पिता ने डाक्टर कार्तिकचंद्र बोस से कहकर उसे कलकत्ता में ही उनकी बोस-प्रयोगशाला में काम दिला दिया।

भावी गुरु के साथ भेंट

सन् 1922 में अभय की भेंट श्री भक्तिसिद्धांत सरस्वती के साथ हुई, जो बाद में अभय के गुरु बने। श्री भक्तिसिद्धांत सरस्वती ने पहली ही भेंट में अभय से कहा कि उसे भगवान चैतन्य महाप्रभु का संदेश समूचे विश्व में फैलाने का कार्य अपने कंधों पर उठा लेना चाहिए, परंतु उन दिनों अभय के मन में यह धारणा पक्की हो चुकी थी कि जब तक भारत विदेशी शासन से मुक्त नहीं हो जाता, तब तक दुनिया में कोई भी न तो उसकी आवाज सुनेगा, न महाप्रभु की शिक्षाओं और कृष्ण-भक्ति की ओर ध्यान देगा। स्वामी जी का चिंतन इसके विपरीत था, उनका विचार था कि कृष्ण-चेतना का प्रसार भारत की स्वाधीनता की प्रतीक्षा नहीं कर सकता।

समूचे विश्व को कृष्ण-चेतना अथवा कृष्ण-भावना से आप्लावित करने का विचार मूलत: श्री भक्तिविनोद ठाकुर के मन में उत्पन्न हुआ था। वे एक महान कृष्ण-भक्त और आध्यात्मिक गुरु थे और उनकी इच्छा थी कि जिस दैवी चेतना की अभिव्यक्ति भगवान कृष्ण के व्यक्तित्व, श्रीमद्भागवत में वर्णित उनकी दिव्य-लीलाओं और श्रीमद्भागवत में उनकी शिक्षाओं के रूप में हुई है, उसका

समस्त विश्व में प्रचार-प्रसार होना चाहिए। श्री भक्तिविनोद ठाकुर की यह कल्पना उनके शिष्य श्री गौरकिशोर दास वावा जी ने अपने शिष्य श्री भक्तिसिद्धांत गोस्वामी के मन में ठूंस-ठूंस कर भर दी थी। श्री भक्तिसिद्धांत गोस्वामी संस्कृत भाषा और वैदिक धर्मशास्त्रों के महान पंडित तथा श्री कृष्ण के महान भक्त थे। उनके मन में प्रबल इच्छा थी कि कृष्ण की लीलाओं और चेतना का समूचे विश्व में प्रसार हो, इस कार्य के लिए उन्होंने प्रथम भेंट में ही अभयचरण डे पर अपनी दृष्टि गड़ा दी।

अभयचरण डे व्यापार की दृष्टि से इलाहावाद चले गये परंतु उन्होंने श्री भक्तिसिद्धांत सरस्वती के साथ संपर्क बनाये रखा और सन् 1932 में उनसे मंत्र दीक्षा प्राप्त करके उन्हें अपना आध्यात्मिक गुरु स्वीकार कर लिया।

सन् 1935 में अभय अपने गुरु के दर्शनों के लिए गोवर्धन गये, जहां राधाकुण्ड के किनारे हुई उन दोनों की भेंट अभय के जीवन की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना बन गयी और उस भेंट ने गुरु के मिशन के बारे में अभय के दृष्टिकोण में एक निर्णायक परिवर्तन कर दिया। इस भेंट में श्री भक्तिसिद्धांत सरस्वती ने अभय की आंखों में झांका और कहा, "मेरे मन में कुछ पुस्तकें प्रकाशित करने की इच्छा थी, यदि तुम्हारे पास कभी पैसा हो तो पुस्तकें छापना।"

"पुस्तकें छापना", यह गुरु का आदेश था। नववंर, 1936 में अभय ने गुरु से पूछा, "मेरे योग्य कोई सेवा हो तो बताइयेगा," गुरु ने उत्तर दिया, "मेरे मन में पक्का विश्वास है कि जो लोग हमारी भाषाएं नहीं जानते, उनके सामने तुम हमारे विचारों और तर्कों की अंग्रेजी में व्याख्या कर सकते हो, ...इससे स्वयं तुम्हें और तुम्हारे श्रोताओं को बहुत लाभ होगा। मेरे मन में पूर्ण विश्वास है कि तुम एक बहुत बड़े अंग्रेजी-प्रचारक बन सकते हो।" इसके एक मास वाद दिसंबर, 1936 में श्री भक्तिसिद्धात सरस्वती ने शरीर छोड़ दिया और सचमुच मठ में आग लग गयी। उनके शिष्य मठ और मंदिर के स्वामित्व के लिए आपस में झगड़ने लगे, यही वह आग थी, जिसकी भविष्यवाणी स्वामीजी ने की थी। दूसरी ओर अभय अपने गुरु के आदेश के अनुसार अंग्रेजी में एक पत्रिका प्रकाशित करने के लिए जूझ रहे थे, उन्होंने पत्रिका नाम रखा—'बैक टू गॉडहैड।'

अभय आध्यात्मिक विषयों, प्रमुखतः गीता पर प्रवचन करने में अपना अधिक समय लगाते, परंतु उनकी धर्मपत्नी उनकी आध्यात्मिक गतिविधि की पूरी तरह उपेक्षा करती थीं। एक दिन उन्होंने अभय की श्रीमद्भागवत कबाड़ी के हाथों बेचकर उससे चाय और विस्कुट खरीद लिये। अभय को इससे बहुत भारी सदमा लगा, जिसे वह सहन नहीं कर पाये और परिवार के साथ संवंध तोड़कर पूरी तरह आध्यात्मिक कार्य में लग गये।

पत्रिका का प्रकाशन

अव अभय कलकत्ता से दिल्ली जा पहुंचे, यहां उन्होंने कुछ लोगों से चंदा लेकर अपनी पत्रिका 'बैक टू गॉडहैड' का प्रकाशन शुरू किया। उसके लिए सव

लेख और सम्पादकीय स्वयं उन्होंने लिखे और उसकी बिक्री की भी स्वयं ही कोशिश की। उन्होंने पत्रिका की कुछ प्रतियां भारत और विदेशों के कुछ प्रमुख लोगों को निःशुल्क भेजीं। अभय के लिए यह बहुत कड़ा समय था। इसी बीच अभय ने वृंदावन में अपने लिए यमुना के तट पर बने एक मंदिर में एक छोटे-से कमरे की व्यवस्था कर ली और उसमें रहना शुरू कर दिया।

एक रात स्वप्न में अभय को उनके गुरु ने दर्शन दिये और संन्यास लेने का आदेश दिया। अभय ने तुरंत संन्यास ले लिया, उनका नया नाम रखा गया 'अभयचरणारविंद भक्तिवेदांत स्वामी'। वे वृंदावन से दिल्ली चले गये और चांदनी चौक के समीप राधाकृष्ण मंदिर में रहने लगे। वहां उन्होंने श्रीमद्भागवत का अंग्रेजी अनुवाद शुरू किया, जिसका पहला खंड सन् 1962 में प्रकाशित हुआ। विद्वानों ने उनके इस कार्य की बहुत प्रशंसा की।

अमरीका यात्रा

कठोर संघर्ष के बाद 13 अगस्त, 1965 को भक्तिवेदांत स्वामी पानी के जहाज से अमरीका के लिए रवाना हुए, जहां की भूमि उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। उनके गुरु श्री भक्तिसिद्धांत सरस्वती ने उन्हें पश्चिमी जगत में कृष्ण-भावना फैलाने का आदेश दिया था। अमरीका पहुंचकर भी उन्होंने श्रीमद्भागवत के अंग्रेजी अनुवाद का कार्य जारी रखा और पश्चिमी जगत के अपने श्रोताओं को श्रीमद्भागवत गीता का दर्शन सिखाने लगे। भक्तिवेदांत स्वामी अपने प्रवचनों द्वारा अमरीका लोक-मानस में गहरे उतरते जा रहे थे। अंततः वे (1) कृष्ण-भावना के प्रचार, (2) संकीर्तन आंदोलन के प्रसार, (3) भगवान कृष्ण के मंदिरों के निर्माण तथा (4) कृष्ण-भावना के विस्तार की दृष्टि से साहित्य के प्रकाशन और वितरण के लिए इंटरनेशनल सोसायटी फॉर कृष्ण-कॉन्शेससनेस (इस्कॉन)—अंतर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ की स्थापना करने में सफल हो गये, उनका असली कार्य यहां से शुरू होता है।

धीरे-धीरे अमरीका की तरुण पीढ़ी उनकी ओर आकर्षित होनी शुरू हुई। आचार्य भक्तिवेदांत स्वामी ने उन्हें महामंत्र का जप और जप करते समय माला के मनके फेरना सिखलाया। अमरीका पहुंचने के एक वर्ष बाद 9 सितंबर, 1966 को उन्होंने प्रथम दीक्षा समारोह आयोजित किया, जिसमें 11 शिष्यों ने उनसे दीक्षा ग्रहण की। अब आंदोलन ने तेज गति पकड़ ली। उन्होंने अपने शिष्यों को मदिरा, तंबाकू, अन्य मादक द्रव्यों, मांस, चाय, कॉफी और विवाहेतर यौन-संभोग के परित्याग की शपथ दिलायी।

भक्तिवेदांत स्वामी सिद्धांतों के मामले में समझौता न करने वाले कठोर गुरु थे, वे अपने अनुशासन में तनिक ढील नहीं देते थे। आश्चर्य तो इस बात का है कि इतनी कड़ाई के बावजूद संसार के लगभग प्रत्येक भाग से हजारों युवक-युवतियां उनकी ओर आकर्षित हुए और उन्होंने उनको गुरु के रूप में स्वीकार करके जीवन

एक शुद्ध आध्यात्मिक आंदोलन के रूप में 'इस्कॉन' विश्व के कोने-कोने में फैल गया।

में कठोर व्रत धारण किये। नियमित रूप से महामंत्र का जप और संकीर्तन करते हुए सड़कों तथा पार्कों में नाचना उनके शिष्यों के नियमित जीवन का अंग बन गया। अनेक कृष्ण मंदिरों की स्थापना की गयी और जगन्नाथ रथयात्रा महोत्सवों का आयोजन किया गया।

इस सब गतिविधि के बीच रहकर भी भक्तिवेदांत स्वामी अपने गुरु का यह संदेश पल भर को भी नहीं भूले, "पुस्तकें छापना" व 'बैक टू गॉडहैड' के लिए नियमपूर्वक लिखते रहे तथा श्री मद्भागवत और अन्य धर्म-ग्रंथों का अंग्रेजी अनुवाद करते रहे। अब वे अपने पांवों पर खड़े हो चुके थे। सन् 1967 के मध्य में वे अपने पाश्चात्य शिष्यों के साथ भारत पधारे। उनके गोरे शिष्यों के सिर मुंडे हुए थे, वे भारतीय वेशभूषा पहने थे, उनके गले में माला-झोलियां लटकी हुई थीं और वे चिल्ला-चिल्लाकर महामंत्र का जप कर रहे थे। उन सब के नाम भी संस्कृत भाषा में थे। यह देखकर भारतीयों की आंखें फटी की फटी रह गयीं। कुछ समय बाद भक्तिवेदांत स्वामी अमरीका लौट गये और अपने साहित्य तथा प्रवचनों के माध्यम से कृष्ण-चेतना अथवा कृष्णभावनामृत का प्रसार करते रहे। वास्तव में वे अपने आपको भगवान कृष्ण के हाथों में उनके कार्य का उपकरण मात्र मानते थे और इसी दृष्टि से अंत तक कठिन परिश्रम करते रहे। उन्होंने 14 नवंबर, 1977 को 81 वर्ष की परिपक्व आयु में वृंदावन के कृष्ण बलराम मंदिर में अपनी नश्वर काया को छोड़ दिया।

इस समय तक अंतर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ संसार के चारों महाद्वीपों पर फैल चुका था। भक्तिवेदांत स्वामी के जन्म पर ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की थी कि

दिव्य कृष्णभावनामृत में विभोर कृष्ण के नाम की माला जपता अमरीका स्थित नव वृन्दावन के हरे कृष्ण गुरुकुल का एक विदेशी ब्रह्मचारी।

वे विश्वभर में 108 कृष्ण मंदिरों की स्थापना करेंगे। भक्तिवेदांत स्वामी के मार्ग-दर्शन में इस्कॉन द्वारा विश्वभर में स्थापित किये गये कृष्ण मंदिरों की संख्या आज उस संख्या के दोगुना से भी अधिक है।

आचार्य भक्तिवेदांत स्वामी पश्चिमी लोक मानस पर यह विचार अंकित करने में सफल रहे कि मनुष्य जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार है और सांसारिक गतिविधि तथा इन्द्रियों की वासना की पूर्ति के कार्यों में लिप्त रहना निरर्थक है। इस प्रसंग में एक उत्साहवर्धक बात यह है कि सोवियत रूस जैसे साम्यवादी देश ने भी इस्कॉन को अपने यहां केन्द्र स्थापित करने की अनुमति दी है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि इस्कॉन एक शुद्ध आध्यात्मिक आंदोलन है। इस्कॉन एक ऐसा मार्ग है, जो साधक को आध्यात्मिकता की दिशा में ले जाता है।

शाश्वत जीवन

आचार्य भक्तिवेदांत स्वामी ने घोर पदार्थवाद से ग्रस्त और त्रस्त पश्चिमी जगत में आध्यात्मिक ज्योति जगायी। आचार्य ने उसको प्रेम तथा पवित्रता, जीवन में उच्चतर ध्येयों की चेतना तथा पदार्थवाद और घोर स्वार्थपूर्ण मूल्य-व्यवस्था के नीचे दम तोड़ती हुई आत्मा की मूर्ति का संदेश दिया। उन्होंने पश्चिमी जगत को दिव्य कृष्णभावनामृत से विभोर कर दिया। समूचे विश्व की युवा पीढ़ी को इस

आंदोलन में अपनी समस्याओं का सही, तर्कसंगत और संतोषजनक समाधान देखायी पड़ा। आचार्य भक्तिवेदांत स्वामी ने संसार के सामने यथार्थवाद, स्वार्थप्रियता, संघर्ष, हिंसा, इन्द्रिय-लोलुपता और अराजकता के दुष्चक्र में दम तोड़ती हुई सभ्यता का एक सही विकल्प पेश किया।

भक्तिवेदांत स्वामी ने गुरु के आदेश—"पुस्तकें छापना"—का गंभीरता से पालन किया और उन्होंने 50 से अधिक पुस्तकें लिखीं। उनकी पुस्तकें करोड़ों की संख्या में बिकती हैं। पाश्चात्य विश्वविद्यालयों में वे पाठ्य-पुस्तकों के रूप में पढ़ाई जाती हैं। उनके जीवनकाल में ही उनकी पुस्तकों का 23 भाषाओं में अनुवाद हो चुका था, जिनमें रूसी भाषा भी शामिल है। उस समय तक उनकी पुस्तकों की अंग्रेजी भाषा में कुल 4 करोड़ 34 लाख 50 हजार प्रतियां तथा अन्य भाषाओं में 5 करोड़ 33 लाख 14 हजार प्रतियां प्रकाशित हो चुकी थीं, जिनमें से 90% पाठकों के हाथों में पहुंच चुकी थीं।

सही बात तो यह है कि भक्तिवेदांत स्वामी के संपर्क में जो लोग आये और उनके शिष्य बने, वे गलत दिशा में जा रहे आधुनिक जगत के भौतिकतावादी जीवन की यंत्रणा से उबर गये। आचार्य ने उन्हें कृष्णभावनामृत अर्थात् उस सर्वोच्च आध्यात्मिक सत्य की दिशा में मोड़ दिया, जो उन्हें शाश्वत अस्तित्व, पूर्ण चेतना और दिव्य आनंद की ओर ले जाती है। उन्होंने इस क्षणभंगुर जीवन के संत्रास को पराजागतिक महोत्सव में रूपांतरित कर दिया। उन्होंने जगत को धर्म का मूल तत्त्व समझाया, "जीवन के प्रति सम्मान—केवल मनुष्य जीवन का नहीं समस्त प्राणियों के जीवन का सम्मान।"

उन्होंने पश्चिम के लोगों को ईसा की शिक्षाओं का स्मरण दिलाया, "तुम हत्या नहीं करोगे।" उन्होंने एक सुदृढ़ और वैज्ञानिक शाकाहार आंदोलन को जन्म दिया और अपने शिष्यों को पवित्र प्राणी गाय के प्रति माता के समान प्रेम और आदर देना सिखाया।

भक्तिवेदांत स्वामी ने साधकों को सलाह दी है कि वे गुरु के सामने समर्पण करें, परंतु दूसरे ही क्षण वे कह उठते हैं, "समर्पण का यह अर्थ नहीं कि तुम कुछ पूछोगे ही नहीं कि तुम गुरु की हर आज्ञा का आंख मूंदकर पालन करने [illegible] अर्जुन को भगवद्गीता का उपदेश देने के बाद श्री कृष्ण उससे कहते हैं, [illegible] *अर्जुन, मैंने तुम्हारे सामने सबसे अधिक गोपनीय ज्ञान की व्याख्या कर दी [illegible] तुमसे जो कुछ कहा है, उस पर अपनी बुद्धि से विचार करो और जो तुम्हें [illegible] वही करो।*" आध्यात्मिक गुरु, वह कृष्ण का प्रतिनिधि हो या स्वयं [illegible] हो, अपनी बात मानने के लिए शिष्य को विवश नहीं करता। [illegible] प्रभाव नहीं होता, यदि बच्चे को भी विवश किया जाये तो वह [illegible] करेगा। ....इस विद्या को अच्छी तरह समझने की कोशिश [illegible] तुम्हें यह विश्वास है कि तुम्हारा गुरु सच्चे अर्थ में ज्ञानी है, [illegible]

समर्पण कर दो, फिर भी हर बात को विवेक और तर्क से समझने की कोशिश करो, तब तुम्हें सचमुच दिव्य-ज्ञान मिल सकेगा।"

एक बार भक्तिवेदांत स्वामी की जन्मपत्री का बारीकी से अध्ययन करने के बाद एक ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की थी, "यह व्यक्ति इतना बड़ा घर बनायेगा, जिसमें सारी दुनिया रह सकेगी।" वह ज्योतिषी ठीक ही कहता था, भक्तिवेदांत स्वामी एक ऐसा विशाल और मजबूत आध्यात्मिक घर बनाने में सफल रहे, जिसमें समूची जीव-सृष्टि समा सकती है। इस्कॉन के रूप में उन्होंने एक दिव्य धरोहर छोड़ी है, जिसे किसी भी अर्थ में गुरु-संस्कृति नहीं माना जा सकता। वह दैवी अथवा दिव्य संस्कृति है। ■■

संत बूटा सिंह और निरंकारी मिशन

हिन्दू धर्म में परमात्मा के विषय में दो धारणाएं प्रचलित रही हैं—पहली तो यह कि परमात्मा निर्गुण निराकार ब्रह्म है अर्थात् वह नाम, रूप और गुण रहित सर्वोच्च चेतना है तथा दूसरी यह है कि परमात्मा सगुण साकार ब्रह्म है। भारत के महानतम दृष्टाओं, संतों और गुरुओं में से एक गुरुनानक देव निराकार ब्रह्म की धारणा के प्रबल समर्थक थे।

निराकार ब्रह्म की धारणा में विश्वास रखने वाले लोग यह मानते हैं कि ईश्वर सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञाता है। वह ब्रह्मांड के समस्त चर और अचर प्राणियों में समान रूप से व्याप्त है। वह पापात्मा और धर्मात्मा में समान रूप से निवास करता है। अत: किसी भी प्राणी के प्रति की गयी हिंसा ईश्वर के प्रति किया गया अपराध है, भले ही वह मनुष्य हो, पशु-पक्षी अथवा रेंगने वाला कीड़ा।

19वीं शताब्दी के अंतिम चरण में पश्चिमी भारत में निराकार ब्रह्म के प्रतिपादक एक महान् गुरु संत बूटा सिंह का उदय हुआ। संत बूटा सिंह बहुत सरल पुरुष थे। बाहर से वे कर्मयोग में लिप्त दिखायी पड़ते थे, परंतु भीतर उनकी चेतना ब्रह्म ज्ञान अथवा आत्म-साक्षात्कार के आनंद में रस-विभोर रहती थी।

संत बूटा सिंह अपनी आजीविका कमाने के लिए अंग्रेजी सेना के सिपाहियों की कलाइयों और उनके शरीर के अन्य अंगों पर शेर, सांप और स्त्रियों आदि के चित्रों का गोदना गोदते थे। यह काम करते हुए वे नौशेरा, लण्डीकोतल, पेशावर तथा अन्य ब्रिटिश छावनियों में घूमते रहते थे। इन सभी स्थानों पर उन्होंने बहुत से मित्र बना लिए थे और वे उनके साथ बैठकर निराकार ब्रह्म की चर्चा करते तथा प्रेम और सहनशीलता की शिक्षा देते थे।

वे एक महान समाज-सुधारक भी थे और सामाजिक कुरीतियों पर भी चोट करते थे। कई दशकों तक वे इसी प्रकार कार्य करते रहे। वे अत्यंत नम्र संत थे और उन्हें इस बात का भान तक न था कि वे संत हैं। वे बहुत सादगी से जीवन व्यतीत करते थे। धीरे-धीरे वह स्थिति आयी कि पश्चिमी भारत में उनको दैवी पुरुष, पवित्रात्मा और गुरु मानने वाले लोगों की संख्या काफी बड़ी हो गयी। उनमें से कोई अपने आपको उनका अनुयायी कहता, कोई भक्त और कोई शिष्य।
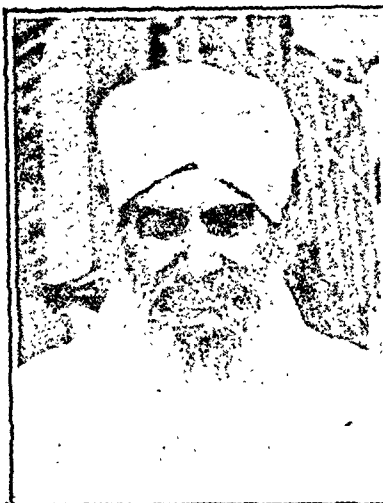
निरंकारियों के प्रथम गुरु संत बूटा सिंह जी के ब्रह्मलीन होने के पश्चात् धर्मप्राण बाबा अवतार सिंह जी ने निरंकारियों के गुरु की पवित्र गद्दी संभाली।

सन् 1929 में एक दिन उनके एक भक्त काहन सिंह को न जाने क्या सूझी कि वह किसी सात्विक लहर के आवेश में बाबा बूटा सिंह को अपने कंधों पर बिठाकर रावलपिण्डी की गलियों में यह कहता हुआ घूम गया कि बाबा बूटा सिंह के अनुयायी निरंकारी कहलायेंगे और बाबा बूटा सिंह उनके प्रथम गुरु माने जायेंगे।

कुछ समय बाद ही बाबा बूटा सिंह के परम भक्त और शिष्य बाबा अवतार सिंह उनको अपने घर ले गये तथा बाबा बूटा सिंह जीवन भर वहीं रहे। बाबा बूटा सिंह का देहांत सन् 1943 में हुआ

गुरु की आवश्यकता

हिन्दू धर्म में हमेशा से यह माना गया है कि ईश्वरत्व अथवा आत्म-साक्षात्कार की प्राप्ति के लिए जीवित गुरु की परम आवश्यकता है, परंतु सिखों के दसवें गुरु, गुरु गोबिन्द सिंह जी ने यह घोषणा कर दी थी कि उनके बाद कोई भी मनुष्य सिखों का गुरु नहीं होगा। उन्होंने भारत के विभिन्न संतों और महात्माओं की पवित्रवाणियों का संग्रह करके सिखों के पवित्र धर्म-ग्रंथ गुरु ग्रंथ साहिब की रचना की और इस पवित्र धर्म-ग्रंथ को सिखों का ग्यारहवां एवं अंतिम गुरु घोषित कर दिया।

निरंकारी सनातन हिन्दू परंपरा के अनुयायी थे और यह मानते थे कि वे जीवित गुरु के मार्गदर्शन के बिना निराकार सर्वोच्च सत्य की खोज संभव नहीं है। निरंकारियों के प्रथम गुरु बाबा बूटा सिंह के देहांत के बाद निरंकारी संगत ने रावलपिण्डी में बाबा अवतार सिंह को उनका उत्तराधिकारी और निरंकारियों का दूसरा गुरु घोषित कर दिया।

निरंकारियों के दूसरे गुरु बाबा अवतार सिंह उच्च कोटि के संत और सिद्ध पुरुष थे। बिना किसी विशेष प्रयास के उनके शिष्यों अर्थात् निरंकारी

अनुयायियों की संख्या तेजी से बढ़ने लगी। सन् 1947 में भारत-विभाजन के पश्चात् बाबा अवतार सिंह को रावलपिण्डी छोड़कर भारत आना पड़ा। वे अपने परिवार और संगत के साथ दिल्ली आ गये और वहां किंग्सवे कैम्प के समीप उन्होंने निरंकारी कॉलोनी बसायी।

बाबा अवतार सिंह हर साल वैशाखी के अवसर पर देश-विदेश में निरंकारियों का संत-समागम आयोजित करने लगे। निरंकारी मत जब बहुत तेजी से फैलने लगा तो पंजाब के अकाली सिख बाबा अवतार सिंह का विरोध करने लगे। वे बाबा अवतार सिंह को गुरु के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते थे, क्योंकि उनके दसवें गुरु का यह आदेश था कि भविष्य में पावन धर्म-ग्रंथ गुरु ग्रंथ साहिब के अतिरिक्त सिखों का कोई अन्य गुरु नहीं हो सकता। इस समय तक निरंकारी अपनी संगतों में श्री गुरु ग्रंथ साहिब का पूजा-पाठ और प्रवचन किया करते थे, जिससे ऐसा आभास मिलता था कि वे सिख हैं। अकाली सिखों ने इस पर आपत्ति उठायी।

सन् 1952 में निरंकारी मिशन का वैशाखी संत समागम अमृतसर में हुआ। उस समय अकालियों ने यह प्रश्न उठाया कि यदि निरंकारी अपने आपको सिख मानते हों तो वे किसी जीवित गुरु को स्वीकार नहीं कर सकते और यदि वे जीवित गुरु को स्वीकार करते हैं तथा यह मान लेते हैं कि वे सिख नहीं हैं तो उन्हें गुरु ग्रंथ साहिब पर प्रवचन करने का अधिकार नहीं है। बाबा अवतार सिंह ने उनका यह तर्क स्वीकार कर लिया और घोषणा कर दी कि निरंकारी आगे से अपने आपको सिख नहीं कहेंगे और भविष्य में निरंकारियों की संगतों और उनके संत-समागमों में गुरु ग्रंथ साहिब का पूजा-पाठ और प्रवचन नहीं होगा।

बाबा अवतार सिंह और उनकी धर्मपत्नी दोनों ही काव्य-रचना करते थे। उन दोनों ने अनेक भक्ति गीत लिखे, जिन्हें अवतार-वाणी के रूप में प्रकाशित किया गया। अवतार-वाणी में अन्य निरंकारी संतों के भजन भी शामिल किये गये हैं। यही अवतार-वाणी बाद में निरंकारियों का धर्म-ग्रंथ बन गयी।

तीसरे गुरु

बाबा अवतार सिंह एक निःस्वार्थ देव-पुरुष और गुरु थे। उनके आध्यात्मिक गुरु बाबा बूटा सिंह ने उन्हें आत्म-साक्षात्कार की विद्या तो सिखायी ही थी, कर्मयोग का पाठ भी पढ़ाया था। बाबा बूटा सिंह ने अपने अनुयायियों को गृहस्थ आश्रम धर्म का पालन करने का आदेश दिया था और सांसारिक उत्तरदायित्वों से भागने तथा संसार छोड़कर साधु बनने की मनाही की थी। उन्होंने स्पष्ट तौर पर कहा था कि किसी भी निरंकारी धर्म प्रचारक अथवा गुरु को संन्यास लेने की अनुमति नही है। इसी कारण बाबा अवतार सिंह ने भी पारिवारिक जीवन की जिम्मेदारी स्वीकार की थी। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती ब
10 दिसंबर, 1930 को अपनी कोख से एक दिव्य बालक को
जिसका नाम रखा गया—गुरबचन सिंह।

सन् 1962 में बाबा अवतार सिंह जी ने अपने सुपुत्र एवं योग्य शिष्य श्री गुरबचन सिंह जी (दायें) को गुरुपद सौंप दिया। इस प्रकार इतिहास में पहली बार एक गुरु ने अपने ही शिष्य को अपने गुरु के रूप में स्वीकार किया।

गुरबचन सिंह अपने पिता बाबा अवतार सिंह के आज्ञाकारी पुत्र तो थे ही, वे उन्हें गुरु के रूप में पिता से अधिक मानते थे और उनकी गुरु-भक्ति पुत्र-भक्ति से बढ़-चढ़कर थी। गुरबचन सिंह का विवाह भारत विभाजन के कुछ पहले 22 अप्रैल, 1947 को ही हो गया था। उनकी पत्नी श्रीमती कुलवंत कौर एक समर्पित निरंकारी भक्त भाई साहब मन्ना सिंह जी की पुत्री थीं।

पाकिस्तान से भारत आने के बाद युवा गुरबचन सिंह ने आर्थिक दृष्टि से परिवार का संचालन करने के लिए मोटर के कल-पुर्जों का व्यापार शुरू किया। यहां यह बात स्पष्ट रूप से समझनी आवश्यक है कि निरंकारी मत के प्रतिपादक और संस्थापक बाबा बूटा सिंह ने निरंकारी गुरु और निरंकारी प्रचारकों के लिए यह कठोर नियम बना दिया था कि उन्हें अपनी आजीविका स्वयं कमानी होगी और वे किसी भी स्थिति में भक्तों से प्राप्त होने वाले धन अथवा दान का इस्तेमाल अपने लिए नहीं करेंगे। दान के एक-एक पैसे का हिसाब रखा जाना चाहिए और उसे केवल निरंकारी मिशन के आदर्शों के प्रचार और विद्यालयों तथा अस्पतालों जैसी सार्वजनिक कल्याण की प्रवृत्तियों पर ही खर्च किया जाना चाहिए।

अतः यह अनिवार्य हो गया था कि निरंकारी बाबा अवतार सिंह के पुत्र गुरबचन सिंह अपनी आजीविका कमाने का प्रबंध करें। उन्होंने जालंधर, दिल्ली और बंबई में अपने व्यापारिक कार्यालयों की स्थापना की और उनके व्यापार से बाबा अवतार सिंह के परिवार को अच्छी आय होने लगी। सन् 1959 में बाबा अवतार सिंह ने गुरबचन सिंह को दिल्ली बुला लिया और उन्हें आदेश दिया कि वे निरंकारी मिशन के दिल्ली मुख्यालय में ही रहें।

सन् 1962 में एक दिन अचानक बाबा अवतार सिंह ने निरंकारी संगत के सामने यह घोषणा कर दी कि उन्होंने अपने पुत्र गुरबचन सिंह को तीसरा निरंकारी

गुरु नियुक्त कर दिया है। गुरबचन सिंह अब बाबा गुरबचन सिंह हो गये। यह एक अनूठा अनुभव था। गुरु ने अपने शिष्य को अपने गुरु के रूप में स्वीकार कर लिया और शिष्य को यह स्थिति स्वीकार करनी पड़ी। इसके बाद बाबा अवतार सिंह सात वर्षों तक जीवित रहे। यह पूरा समय बाबा गुरबचन सिंह ने देशभर में निरंकारी आदर्शों के प्रचार और निरंकारी संगतों के संगठन पर लगाया।

बाबा गुरबचन सिंह बहुत सत्यनिष्ठ और अहिंसाप्रिय संत थे। उनकी हत्या के अनेक प्रयास हुए, परंतु वे हमेशा शांत बने रहे और उन्होंने अपने शिष्यों को भी शांति बनाये रखने तथा हिंसा का मार्ग न अपनाने का आदेश दिया। वे कहा करते थे कि उन्हें सबसे अधिक कष्ट तब होता है, जब मनुष्य का रक्त गिराया जाता है।

उन्होंने जीवनभर सादगी, निरामिषाहार तथा मद्य-निषेध पर बल दिया। उनके जीवन-काल में निरंकारी मिशन ने आशातीत प्रगति की। उन्होंने भारत में एक ऐसे समाज के निर्माण की दिशा में अपनी समूची शक्ति लगायी, जिसमें सब धर्मों के लोग शांति, सद्भाव और परस्पर-सहिष्णुता बनाये रखकर सत्य तथा आध्यात्मिक दृष्टि और आध्यात्मिक मूल्यों को साकार करने के लिए कटिबद्ध हों।

इस बात पर विश्वास करना बहुत कठिन है कि कोई मनुष्य बाबा गुरबचन सिंह जैसे संत पुरुष की हत्या कर सकता है, परंतु यह सच हो गया। 24 अप्रैल, 1980 को वे नई दिल्ली के निरंकारी-भवन अहाते में अपने निवास के सामने ही हत्यारों की गोलियों से आहत होकर धराशायी हो गये। यह एक संकट और संत्रास की घड़ी थी, समूची मानव जाति के लिए हृदय टटोलने की बेला थी–जिस व्यक्ति ने जीवनभर प्राणी मात्र के प्रति प्रेम और करुणा का पाठ पढ़ाया, उसे ही बर्बरतापूर्वक गोलियों से भून दिया गया। उनकी हत्या के समाचार से समूचे राष्ट्र को गहरा आघात लगा तथा राष्ट्र की ओर से तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने उनके प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित की।

बाबा हरदेव सिंह

बाबा गुरबचन सिंह की छाती में पहली गोली धंसी ही थी कि उनका कोई शिष्य चिल्लाया, "हे भगवान, अब हम क्या करेंगे?" बाबा के शरीर से रक्त की धारा बह रही थी, फिर भी उन्होंने उस भक्त को धीरज बंधाते हुए कहा, "चिंता मत करो मेरे बच्चे, मेरे जाने के बाद तुम्हारा मार्गदर्शन भोला करेगा।" और अगले ही क्षण उन्होंने अपनी पार्थिव काया छोड़ दी।

बाबा गुरबचन सिंह ने प्राण त्यागते समय जिस भोला पर यह विश्वास किया था कि वह निरंकारी संगत का मार्गदर्शन करेगा, वह और कोई नहीं, उनका ही इकलौता पुत्र और परम भक्त हरदेव सिंह था। 27 अप्रैल, 1980 को बाबा गुरबचन सिंह के पार्थिव अवशेष विद्युत-शवदाह-गृह में अग्नि की पवित्र ज्वाला को समर्पित किये जाने के बाद वे निरंकारियों के चौथे आध्यात्मिक गुरु के रूप में प्रतिष्ठित हुए और बाबा हरदेव सिंह के नाम से प्रसिद्ध हुए।

बाबा गुरबचन सिंह की हत्या के उपरांत उनके पुत्र श्री हरदेव सिंह ने निरंकारियों के गुरु की पवित्र गद्दी संभाली।
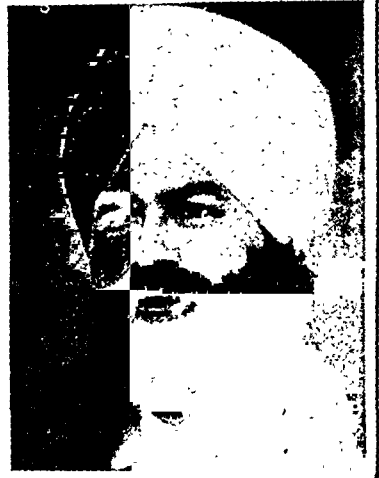
निरंकारी आंदोलन के इतिहास में यह महान संकट की घड़ी थी। निरंकारी गुरु की हत्या कर दी गयी थी और नया निरंकारी गुरु आयु की दृष्टि से तो युवा था ही, भूतपूर्व गुरु का पुत्र भी था। बाबा गुरबचन सिंह के प्रति श्रद्धांजलि समर्पित करने तथा उनके स्थान पर नये गुरु का स्वागत करने के लिए एकत्र निरंकारी संगत में भारी उत्तेजना फैली हुई थी। विशेषत: युवा निरंकारी अपने गुरु की हत्या का बदला लेने के लिए पागल हो उठे थे और उनके मन में यह आशा थी कि बाबा हरदेव सिंह अपने पिता और गुरु बाबा गुरबचन सिंह के रक्त का बदला अवश्य लेंगे, परंतु बाबा हरदेव सिंह बाबा गुरबचन सिंह के सच्चे और योग्य शिष्य सिद्ध हुए।

एक सिद्ध पुरुष की भांति उत्तेजित भीड़ को संबोधित करते हुए उन्होंने शांत-भाव से कहा, "बाबा गुरबचन सिंह जी के साथ मेरा दोहरा संबंध है, वे आध्यात्मिक गुरु थे और पिता भी। उनकी हत्या का बदला लेने की बात सबसे पहले मेरे मन में आनी चाहिए थी, लेकिन उनके निर्देशों और उनकी शिक्षाओं ने मेरे मन में इस प्रकार के संकीर्ण विचार उठने ही नहीं दिये। उनके पवित्र हृदय और दूसरों के प्रति उनकी करुणा ने मुझे आप्लावित कर दिया। ....यह सब जो हो रहा है, यह निराकार की लीला है। जो लोग सोचते हैं कि बाबा जी का रक्त बदला लेगा, वे अज्ञानी हैं। वे अज्ञानवश ऐसा सोच रहे हैं कि अब खुलकर खून बहेगा। संतों ने भी कहा है कि निर्दोष रक्त जब धरती पर गिरता है तो उसमें से महान शक्ति उत्पन्न होती है, लेकिन इन दोनों धाराणाओं में बहुत अंतर है। महापुरुष रक्तपात नहीं देखना चाहते, वे समूची सृष्टि में शांति और आनंद का साम्राज्य स्थापित करना चाहते हैं। हमें अपने सामने इसी आदर्श को रखना है और अपने मिशन को आगे ले जाना है।"

बाबा गुरबचन सिंह के सचिव और परम सात्विक विचारक श्री जयराम दास सत्यार्थी, जिन्हें निरंकारी संगत के लोग प्रेमपूर्वक शास्त्री जी के नाम से संबोधित करते हैं, इस समूचे संदर्भ को एक उदात्त दृष्टि से देखते हैं, "इतिहास पढ़ने पर पता चलता है कि दुनिया में जितना अत्याचार धर्म के नाम पर या धर्म की रक्षा के नाम पर हुआ, उतना और किसी कारण से नहीं हुआ। निरंकारी मिशन को यदि निरंकार-प्रभु ने गुरुदेव हरदेव जैसा मार्गदर्शक न दिया होता तो आज लाखों निरंकारी भी धर्म के नाम पर न जाने क्या गुजर चुके होते।"

निरंकारी शिक्षाएं

निरंकारी मिशन की शिक्षाओं का सार यह है कि ईश्वर की शरण में संत और पापी दोनों का समान रूप से प्रवेश है। पापी से यह कहना निरर्थक है कि ईश्वर की शरण में आने से पहले वह अपने पाप से मुक्त हो जाये क्योंकि मनुष्य के मन को पवित्र करने और उसकी आत्मा में प्रकाश जगाने का एक ही साधन है कि उसके भीतर परमात्मा की अनुभूति उत्पन्न हो। ईश्वर की शरण में जाकर ही शुद्ध हुआ जा सकता है। ईश्वर की अनुभूति ही आत्मा को शुद्ध कर सकती है।

निरंकारी मत में दीक्षा प्राप्त करने के लिए साधक को पांच प्रतिज्ञाएं लेनी होती हैं:—(1) मैं अपने तन, मन, धन को ईश्वर की अमानत समझकर प्रयोग करूंगा, (2) मैं जाति-पांति, धर्म अथवा वर्ग आदि किसी प्रकार के बंधनों में अपने आपको नहीं बांधूंगा, (3) मैं किसी भी मनुष्य से उसके खान-पान और पहनावे के कारण घृणा नहीं करूंगा, (4) मैं गृहस्थ आश्रम में रहकर ही समाज के सभी कर्त्तव्यों का पालन करते हुए अपनी जीवन-यात्रा को सफल करूंगा, (5) मैं सद्गुरु की अनुमति के बिना किसी दूसरे को इस सद्ज्ञान की अनुभूति कराने की चेष्टा नहीं करूंगा, जो मुझे मेरे सद्गुरु से प्राप्त हुआ है।

निरंकारियों को अपने दैनिक जीवन में तीन स्वर्ण नियमों का पालन [illegible] सिखाया जाता है:—(1) सत्संग, (2) सुमिरन और (3) सेवा।

निरंकारी मिशन को समूची मानव जाति की एकता, [illegible] और एक ही निराकार सार्वभौम तथा सर्वोच्च परमात्मा [illegible] है। निरंकारी मिशन संसार भर में तेजी से फैलता जा रहा है [illegible] सिद्धांत जीवित गुरु से मार्गदर्शन प्राप्त करना है। [illegible] स्वार्थ, अहंकार और सांप्रदायिकता पर चोट [illegible] सार्वभौमिकता का उदार दृष्टिकोण प्रदान करता है [illegible] शास्त्र में हैं।

श्री हंस महाराज

हंस महाराज का जन्म 8 नवंबर, 1900 को पौढ़ी गढ़वाल जिले के तलाई परगने के गाढ़-की-सीढ़ियां गांव में हुआ था। उनके पिता रणजीत सिंह ने उनका नाम हंसा रामसिंह रखा। वे एक संपन्न किसान थे। हंसा रामसिंह की मां कालिन्दी देवी एक दयालु और धर्मशील महिला थीं। वे भगवान शिव और देवी पार्वती की उपासिका थीं। हंसा रामसिंह नाम में 'हंसा' शब्द देवी सरस्वती के वाहन हंस से तनिक संबंध न था। रामसिंह के चेहरे पर सदा हंसी खेलती रहती थी, अतः उनके नाम रामसिंह में 'हंसा' शब्द जोड़ दिया गया था। धीरे-धीरे हंसा से वे हंस हो गये और बाद में इस शब्द की परिभाषा संस्कृत भाषा के हंस शब्द के अनुसार आत्मा के रूप में की जाने लगी।

हंस महाराज छोटी अवस्था में ही स्वामी स्वरूपानंद महाराज के संपर्क में आ गये थे, जो बाद में उनके गुरु बने। उनकी प्रेरणा से ही हंस महाराज ने अज्ञानियों को आध्यात्मिक ज्ञान देने का बीड़ा उठाया। शुरू में वे पंजाब और सिंध प्रांतों में प्रचार करते रहे। सन् 1935 से वे दिल्ली, उत्तर प्रदेश और राजस्थान में भी प्रचार करने लगे। वे ध्यान तथा धर्मशास्त्रों की शिक्षाओं का प्रचार करते थे। वे चुंबकीय व्यक्तित्व के धनी और प्रभावशाली वक्ता थे। वे अपने शिष्यों को ईश्वर के नाम की दीक्षा देते और उनके भीतर दैवी चेतना जागृत करते थे। वे नाम-जप पर बहुत बल देते थे। वे ईश्वर को दिव्य-ज्योति अथवा सत्य की ज्योति के रूप में परिभाषित करते थे।

सन् 1936 में उन्होंने साहित्य-प्रकाशन का काम हाथ में लिया। उनका पहला ग्रंथ योग प्रकाश था। सन् 1943 में उनके आश्रम के लिए एक भूखंड खरीदा गया और सन् 1950 में उस पर निर्माण शुरू हुआ। आश्रम का नाम प्रेम नगर रखा गया।

विवाह और संतान

श्री हंस महाराज का विवाह सन् 1947 में, अर्थात् 47 वर्ष की आयु में श्री गोपाल सिंह की 15 वर्षीया पुत्री राजेश्वरी देवी के साथ हुआ। राजेश्वरी देवी विवाह के समय हंस महाराज से 32 वर्ष छोटी थीं। इस दंपति ने तीन बालकों को जन्म दिया—सतपाल रावत, प्रेमपाल रावत और महीपाल रावत। तीनों बेटों की शिक्षा-दीक्षा दून-स्कूल और कैम्ब्रियन हॉल जैसे कान्वेंट स्कूलों में हुई।

चुंबकीय व्यक्तित्व के धनी और प्रभावशाली वक्ता हंस महाराज नाम-जप पर बहुत बल देते थे।

सन् 1966 में हंस महाराज के देहांत के बाद सबसे पहले उनके दूसरे बेटे प्रेमपाल रावत को हंस महाराज के रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए बाल भगवान के नाम से लाया गया। शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि बाल भगवान अपनी अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा और विदेशी शिष्य मंडली के प्रभाव में आकर हंस महाराज के मार्ग से विचलित हो गये हैं, अतः हंस महाराज की विधवा श्रीमती राजेश्वरी देवी ने अपने बेटे प्रेमपाल रावत का बहिष्कार कर दिया और उसके स्थान पर बड़े बेटे सतपाल रावत को प्रतिष्ठित किया।

इस प्रकार सतपाल रावत अब सतपाल महाराज हो गये और अपने पिता की भक्तमंडली का मार्गदर्शन कर रहे हैं। उनकी गतिविधियां बहुमुखी हैं। सन् 1989 में उन्होंने कांग्रेस के टिकट पर लोकसभा के लिए चुनाव लड़ा, जिसमें वे पराजित हुए। भारत और विदेशों में उनके असंख्य अनुयायी हैं। वे मानव-धर्म का प्रचार करते हैं।

प्रेमपाल रावत, जो बाल भगवान के नाम से प्रख्यात हुए थे, अपने पैरों पर खड़े हैं। भारत और विदेशों में उनके अनुयायियों की संख्या भी कम नहीं है। भारत और अमरीका दोनों उनके कर्म क्षेत्र हैं। दिल्ली के महरौली क्षेत्र में उन्होंने संत योग आश्रम की स्थापना की है। यह आश्रम हजारों एकड़ उपजाऊ भूखंड पर फैला है। उनके शिष्य अब उन्हें 'गुरु महाराजजी' कहते हैं। अमरीका में उन्होंने डिवाइन लाइट मिशन की स्थापना की है तथा वे गुरु के पद पर प्रतिष्ठित हैं। वे ध्यान पर जोर देते हैं और अपने शिष्यों को ईश्वर का प्रत्यक्ष अनुभव कराने का दावा करते हैं। वे नैतिकता का ढोल नहीं पीटते। वे अपने शिष्यों को सीधे ज्ञान प्रदान करते हैं। वे उन्हें उनकी उन आंतरिक तरंगों की चेतना प्रदान कर देते हैं, जो उन्हें आत्म-साक्षात्कार करा देती हैं। उनके दायरे में गुरु महाराज की सेवा पर बल दिया जाता है।

हंस महाराज के देहांत के बाद उनके दूसरे बेटे प्रेमपाल रावत् (बायें) को बाल भगवान के नाम से गुरु पद पर अधिष्ठित किया गया परंतु शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि अंग्रेजी शिक्षा तथा विदेशी मंडली के प्रभाव में आकर बाल भगवान हंस महाराज के मार्ग से विचलित हो गये हैं।

गुरु महाराजजी के शिष्य दावा करते हैं कि गुरु महाराजजी की कृपा से ईश्वर के सम्मुख की गयी उनकी प्रार्थना संवाद का रूप लेने लगी है। वे ईश्वर से प्रार्थना करते हैं और प्रार्थना के उत्तर में ईश्वर की वाणी भी सुन सकते हैं। वे गुरु महाराजजी को पूर्ण-गुरु मानते हैं। गुरु महाराजजी अपने पिता हंस महाराज और अपने बड़े भाई सतपाल महाराज की भांति विवाहित हैं।

डिवाइन लाइट मिशन का अमरीकी राष्ट्रीय मुख्यालय कोलोरेडो राज्य के डेनवर नगर में है। मिशन की स्थापना सन् 1972 में हुई थी। डेनवर में मिशन की ओर से श्री हंस एजूकेशनल, श्री हंस पब्लिकेशन, डिवाइन ट्रैवल सर्विसेज़, वीमैन्स स्प्रिचुअल लाइट ऑर्गेनाइजेशन और श्री हंस प्रोडक्शंस की स्थापना की गयी है। मिशन मासिक पत्रिका 'एंड इट इज डिवाइन' तथा 'डिवाइन टाइम्स' पाक्षिक का प्रकाशन करता है। मिशन गैस-स्टेशन, रेस्तरां, स्टोर्स आदि व्यापारी संस्थान भी चलाता है। श्री हंस प्रोडक्शंस में फिल्में बनायी जाती हैं। इस प्रसंग में सबसे अधिक मजेदार बात यह है कि गुरु महाराज की गतिविधि पर लाखों डॉलर होते हैं और जब यह पूछा जाता है कि यह दौलत कहा से आती है तो एक ही मिलता है—"गुरु महाराज की कृपा से।" गुरु महाराज के भक्त उन्हें साकार-ईश्वर मानते हैं। गुरु महाराज कहते हैं, "मुझे अपना प्रेम दो और मैं तुम्हें शांति दूंगा। ....अपने जीवन की बागडोर मेरे हाथों में थमा दो, मैं तुम्हें मोक्ष प्रदान कर दूंगा। मैं इस जगत में शांति का स्रोत हूं।"

बाल भगवान उर्फ गुरु महाराजजी उर्फ प्रेमपाल रावत ने अपने पिता हंस महाराज के आध्यात्मिक मिशन को एक गुरु-संस्कृति का रूप दे डाला है, जिसका श्री हंस महाराज ने जीवनभर जमकर विरोध किया था। ■■

दादा लेखराज और ब्रह्माकुमारी आंदोलन

हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार ब्रह्माडीय कालचक्र की एक परिक्रमा में कलियुग अंतिम अवस्था है। कलियुग को लौहयुग भी कहा जाता है और यह माना जाता है कि इस युग में मनुष्य जाति सबसे निचली मानसिक अवस्था में पहुंच जाती है, अर्थात् मनुष्य इस जगत के अस्तित्व के आध्यात्मिक स्वरूप की ओर से पूरी बेखबर होकर भौतिक और पदार्थवादी जीवन में खोया रहता है। यह भी माना गया है कि कलियुग जब अपने चरम शिखर पर पहुंच जाता है और समाप्त हो जाता है, तब पृथ्वी पर स्वर्णयुग अर्थात् सतयुग का उदय होता है और मनुष्य पूरी तरह सदाचारी, सज्जन, आध्यात्मिक और श्रेष्ठ बन जाता है।

दादा लेखराज की शिक्षाओं का सार यही है। उनके शिष्य उन्हें ब्रह्मा बाबा कहते हैं। दादा लेखराज आधुनिक भारत के उन गुरुओं में से हैं, जिन्होंने जीवन भर मनुष्य जाति को सतयुग के लिए तैयार करने, मनुष्य के मन की आंतरिक गहराइयों में उच्चतर चेतना जगाने और यह आशा उत्पन्न करने की चेष्टा की कि सतयुग अब दूर नहीं है।

दादा लेखराज का जन्म सिंध प्रांत के हैदराबाद जिले के एक गांव में सन् 1880 में हुआ था। अब तो यह प्रांत पाकिस्तान में चला गया है। उनके पिता शिक्षक थे। दादा लेखराज जब बड़े हुए तो उन्होंने जौहरी का धंधा अपनाया और वे समूचे भारत तथा नेपाल तक हीरे-जवाहरात का थोक व्यापार करने लगे। बचपन से ही उनकी प्रवृत्ति धार्मिक थी। वे श्रीमद्‌भगवद गीता का बहुत मनोयोगपूर्वक अध्ययन करते थे। दादा लेखराज की पत्नी जसोदा जी भी धार्मिक वृत्ति की थीं। दादा लेखराज के शिष्यों के अनुसार उन्हें अपने चाचा की मृत्यु के समय उनकी आत्मा का दर्शन हुआ था। इस घटना से प्रेरित होकर उन्होंने सघन ध्यान-साधना शुरू कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि दादा लेखराज को भगवान विष्णु का दर्शन हुआ और विष्णु ने उनसे कहा, "तुम भी विष्णु ही हो।" इसके बाद एक दिन उन्हें अपने भीतर एक आवाज सुनायी दी, "तुम्हें एक दिव्य विश्व व्यवस्था की पुनर्स्थापना के लिए दिव्य उपकरण बनना है।" उन्हें दिव्य राजकुमारों और राजकुमारियों के भी दर्शन हुए और उनके मन में ऐसा भाव उत्पन्न हुआ कि उन्हें दैवी साम्राज्य के उन सुंदर राजकुमारों और राजकुमारियों के विश्व की स्थापना के लिए कार्य करने का आदेश मिला है।

ब्रह्माकुमारी आंदोलन के संस्थापक दादा लेखराज (ब्रह्मा बाबा)

आंदोलन के वर्तमान सर्वेसर्वा ब्रह्माकुमारी प्रकाशमणी

उनके मन में यह धारणा पक्की तरह बैठ गयी कि उन्हें ईश्वर ने कलियुग को समाप्त करके स्वर्ण युग की स्थापना की प्रक्रिया शुरू करने का काम सौंपा है। उन्हें प्राय: समाधि लग जाती थी और समाधि में ही वे नाना प्रकार के दृश्य देखा करते थे। यह बात सन् 1936 की है, तब उनकी आयु लगभग 56 वर्ष थी। इसी समय उन्होंने नियमित सत्संग शुरू कर दिया और आगे जाकर सन् 1938 में अपनी समूची संपत्ति का ट्रस्ट बनाकर वे उस कार्य में जुट गये, जो उनके विचार से उन्हें ईश्वर ने सौंपा था।

संभोग : नरक का द्वार

दादा लेखराज ने अपने कार्य की शुरुआत 'ब्रह्मचर्य पर आग्रह' से की। वे मानते थे कि संभोग नरक का द्वार है। उनके इस विचार से विशेषत: स्त्रियां बहुत प्रभावित हुईं और भारी संख्या में दादा लेखराज के मिशन में शामिल होने लगीं। उनके मिशन का नाम उस समय ओम मंडली था। उन्हें पक्का विश्वास हो गया था कि कलियुग का प्रमुख आधार यौन-वासना है, अत: जब तक यौन-वासना पर पूरी तरह विजय प्राप्त नहीं होगी, तब तक इस पृथ्वी पर सतयुग का उदय नहीं हो सकता।

ओम मंडली ने आकार ग्रहण करना शुरू कर दिया तथा वह प्रमुखत: स्त्रियों की संस्था बन गयी। दादा लेखराज और उनकी धर्मपत्नी उन स्त्रियों की देखरेख करने लगे और उन्होंने उन्हें नाना प्रकार की दस्तकारियों की शिक्षा भी प्रदान की, जिससे कि वे आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी बन सकें। इसके अतिरिक्त ध्यान और राजयोग का अभ्यास भी शुरू किया गया।

थे। ईश्वर-आविष्ट का अर्थ है कि उनके शरीर में ईश्वर का आवेश हुआ था और ईश्वर उनके शरीर में बस गया था। वे दादा लेखराज को गुरु अथवा भगवान अथवा दिव्य पुरुष नहीं मानते। दादा लेखराज स्वयं भी गुरु-पूजा के विरोधी थे। उनकी दृष्टि में अंधकार का विनाश और प्रकाश का विस्तार केवल ईश्वर ही कर सकता है, अतः सच्चा गुरु ईश्वर ही हो सकता है। दादा लेखराज न किसी को अपने सामने साष्टांग प्रणाम करनें देते थे, न पांव छूने देते थे। वे स्वयं को ईश्वर के हाथों का यंत्र मानते थे। उनको विश्वास था कि वे ईश्वर का वाहन हैं, भगवान शिव के नन्दी, पवित्र बैल। स्वामी कहलाने के बजाय वे खुदायी-खिदमतगार अर्थात् ईश्वर का सेवक कहलाना पसंद करते थे।

वे कोई चमत्कारी पुरुष न थे। वे राजयोग की शिक्षा देते थे, जिसका लक्ष्य जीवन-मुक्ति है, अर्थात् ऐसे लोगों का निर्माण, जो पृथ्वी पर जीते हुए भी मुक्त जीवों की तरह आचरण करें। उनका मार्ग ज्ञान का मार्ग था। वे स्त्रियों को साक्षात् शक्ति मानते थे और उनको यह प्रेरणा देते थे कि वे इस पृथ्वी पर से अज्ञान अथवा माया का अंधकार दूर करने के काम में जुट जायें। वे चाहते थे कि मानव जाति निराकारी, निर्विकारी और निरहंकारी बन जाये, अर्थात् वह आकार रहित ब्रह्म की उपासना करे, उसके जीवन में विकार न हो और उसका मन अहंकार अर्थात् काया की चेतना से मुक्त हो जाये। वे जाति, वर्ण अथवा धर्म के आधार पर मनुष्यों के बीच भेद नहीं करते थे।

विश्वविद्यालय

ब्रह्माकुमारी संगठन ने अपने अंतर्राष्ट्रीय मुख्यालय माउंट आबू में प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय की स्थापना की है। इस विश्वविद्यालय का लक्ष्य आध्यात्मिक ज्ञान और राजयोग की शिक्षा द्वारा विश्व में शांति स्थापित करना है। इसके अतिरिक्त भारत और विदेशों में इस आंदोलन के 1750 केन्द्र हैं। अकेले दिल्ली में इसकी 30 शाखाएं हैं। अफ्रीका, दक्षिण अमरीका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, कनाडा, डेनमार्क, फीजी, फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी, यूनान, हॉलैंड, हांगकांग, इंडोनेशिया, आयरलैंड, इजरायल, इटली, जापान, मलेशिया, अमरीका, इंग्लैंड तथा युरोप और एशिया के अन्य अनेक देशों में ब्रह्माकुमारी केन्द्र हैं। उनकी ओर से विश्व सहयोग सम्मेलनों का आयोजन किया जाता है तथा वे संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ भी जुड़े हैं ब्रह्माकुमारी विश्वविद्यालय सन् 1980 से संयुक्त राष्ट्र संघ के सार्वजनिक सूचना विभाग से संबद्ध है। फरवरी, 1983 में उसे परामर्शदाता के रूप में मान्यता प्राप्त हो गयी तथा संयुक्त राष्ट्र आर्थिक और सामाजिक परिषद् के रोस्टर पर भी स्थान प्राप्त हो गया। ब्रह्माकुमारी आंदोलन ने धीरे-धीरे एक उपसंस्कृति का रूप धारण कर लिया है, परंतु यह बात संतोषजनक है कि अभी तक उसका स्वरूप सकारात्मक बना हुआ है, वह नकारात्मक दिशा में नहीं गया है। ■■

बाबा के बारे में सुन रखा था। उन लोगों ने सत्य के माता-पिता को धैर्य रखने और अपने बेटे के प्रति संयमपूर्वक व्यवहार करने की सलाह दी, क्योंकि उसके मन और शरीर में जिस अतिथि-आत्मा ने प्रवेश कर लिया था, वह दुष्ट न थी वरन् एक महान दृष्टा थी, संत और परम भागवत-शिरडी के साईं बाबा की पवित्र आत्मा थी। शिरडी वाले साईं बाबा ने सन् 1918 में अपने भौतिक कलेवर का त्याग करने से पहले अपने भक्तों को आश्वासन दिया था कि वे कुछ समय पश्चात् अवतार ग्रहण करेंगे।

शिरडी के साईं बाबा अपनी दैवी शक्तियों तथा समय-समय पर दिखाये अपने चमत्कारों के कारण विश्वभर में विख्यात रहे हैं, हालांकि वे अपने भक्तों के प्रति यह आग्रह रखते थे कि वे अपने भीतर उदारता और करुणा सरीखे गुणों का विकास तथा आध्यात्मिक मोक्ष की साधना करें। वे अपने भक्तों को उडी अर्थात् अपनी सतत् प्रज्वलित धूनी में से चुटकी भर भस्मी (भभूति अथवा विभूति) दिया करते थे, जो रोगियों तथा अन्य प्रकार के कष्ट पा रहे लोगों को चमत्कारिक ढंग से लाभ पहुंचाया करती थी।

एक कदम आगे

पुट्टपार्थी के सत्य साईं बाबा शिरडी के उन साईं बाबा से भी एक कदम आगे बढ़ गये, जिनका अवतार होने का दावा वे करते हैं। पवित्र विभूति प्राप्त करने के लिए उन्हें प्राचीन हिंदू एवं मुस्लिम सूफी संतों की भांति अखंड सुलगती धूनी की आवश्यकता न थी। वे अपने आसपास के आकाश में हाथ फैलाकर राख उत्पन्न कर देते और अपने भक्तों को आश्चर्य में डाल देते। उन्हें यह विश्वास हो गया कि सत्य साईं बाबा में निश्चय ही दिव्य शक्तियां निवास करती हैं। वे पवित्र हिन्दू धर्म-ग्रंथों द्वारा दु:खालय के रूप में निरूपित जगत के भीतर तन, मन और जीवात्मा की समस्त व्याधियों की रामबाण औषधि के रूप में वह राख अपने भक्तों को प्रदान करते हैं।

यह भी कहा जाता है कि उनके भक्त अपने घरों पर अथवा सार्वजनिक उपासना-गृहों में उनके चित्रों के सामने पवित्र विभूति के लिए याचना करते हैं तो चित्रों के चौखटों में से राख झरने लगती है। सत्य साईं बाबा का यह दावा सही है कि उन्होंने विभिन्न धर्मों के वांगमय का अध्ययन नहीं किया, तथापि वे उनसे काफी बड़ी मात्रा में उद्धरण देते रहते हैं। उन्हें सिद्ध पुरुष अथवा स्वयं परमात्मा माना जाता है। उन्हें सोने की आवश्यकता नहीं है तथा कहा जाता है कि उन्होंने 13 वर्ष आयु के पश्चात् झपकी तक नहीं ली।

सत्य साईं बाबा कहते हैं कि पुनर्जन्म ग्रहण करने के पीछे उनका प्रयोजन विश्व को हिंसा के मार्ग से हटाना तथा मानव जाति को प्रेम और करुणा के मार्ग पर अग्रसर करना है। उनकी दृष्टि में मानव जीवन का लक्ष्य प्रेम में विकसित होना है।

सत्य साईं बाबा कहते हैं कि वे स्वयं जाति, आस्था, संप्रदाय अथवा धर्म के

साईं कृष्ण के अनुसार उसकी शक्तियों का आदिस्रोत सत्य साईं बाबा हैं। 6 वर्ष की आयु में वह चमत्कार दिखाने में पूरी तरह समर्थ हो गया। पुट्टपार्थी के सत्य साईं बाबा की तरह साईं कृष्ण भी हवा में हाथ लहराकर आम, सेब, पेंडेंट, गुड़, बालियां, रुपयों के नोट, चॉकलेट और सत्य साईं बाबा के चित्र तथा बिल्ले उत्पन्न करने लगा।

सत्य साईं बाबा द्वारा चमत्कार दिखाने की शक्ति को यदि वास्तव में दिव्य शक्ति माना लिया जाये तब भी यह प्रश्न तो उठता ही है कि, "क्या सत्य साईं बाबा एक गुरु हैं?"

पारंपरिक परिभाषा के अनुसार गुरु एक ऐसा आध्यात्मिक शिक्षक होता है, जो अपने शिष्यों को भौतिक जगत की क्षणभंगुरता का भान कराता है, उनमें जगत तथा जागतिक वस्तुओं के प्रति विरक्ति का भाव उत्पन्न करता है तथा उन्हें आत्म-साक्षात्कार अर्थात् शाश्वत् अस्तित्व, पूर्ण चैतन्य की ओर ले जाता है। गुरु के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह चमत्कार दिखाये तथा शरीर और मन के रोगों से मुक्ति प्रदान करे। उसका सबसे बड़ा चमत्कार यही है कि वह अपनी तथा अपने शिष्यों की चेतना को आत्मा में प्रतिबिंबित कर दे और उसकी आरोग्यकारी शक्ति की सबसे बड़ी कसौटी यह है कि वह आत्मा को स्वास्थ्य प्रदान करे तथा उसे आवागमन (जन्म और मृत्यु) के चक्र तथा उस चक्र में फंसने के कारण प्राप्त होने वाले सांसारिक दुःखों और कष्टों से मुक्ति दिलाये। एक सच्चा गुरु अपने शिष्यों की चेतना को आध्यात्मिक दृष्टि प्रदान करता है तथा उसे जीवन के भौतिक साधनों से परे परामानसिक स्तरों तक उन्नत कर देता है।

सत्य साईं बाबा की चमत्कार करने की शक्ति तथा परा-नैसर्गिक सामर्थ्य के भौतिक प्रदर्शन के कारण ही लाखों लोग उनके भक्त बने हैं। उनके भक्त उन्हें ईश्वर मानकर पूजते तथा सांसारिक कष्टों से राहत प्राप्त करने और ऐन्द्रिक तृप्ति पर आधारित सुखी सांसारिक जीवन के लिए उनका मुंह जोहते हैं। ■■

ला वे और शैतान की पूजा

मानव सभ्यता के इतिहास में शैतान की कल्पना उतनी ही पुरानी है, जितनी कि स्वयं ईश्वर की। मनुष्य को सदा दो अस्तित्वों पर विश्वास रहा है। ये दो परा-भौतिक शक्तियां एक दूसरे के प्रतिकूल हैं। इनमें से अच्छाई की शक्ति को ईश्वर और बुराई की शक्ति को दैत्य अथवा शैतान कहा जाता है।

मनुष्य ने जिस प्रकार ईश्वर के रूप की कल्पना की है, उसी प्रकार शैतान का रूप भी निर्धारित किया है। उसके हाथ-पांव चमगादड़ के पंजों जैसे हैं। उसकी पीठ में पंख हैं और उसके माथे पर दो नुकीले सींग। शैतान की ऐसी प्रतिमाएं विश्व की प्राचीनतम सभ्यता मेसोपोटामिया की खुदायी में प्राप्त हुई हैं। वहां इसे पाजूजू (Pazuzu) अर्थात् दैत्य सम्राट अथवा 'वायु को हानि पहुंचाने वाली आत्माओं' का सम्राट कहा गया। संस्कृत भाषा में पाजूजू पिशान बन गया।

इस्लाम धर्म में भी शैतान के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। प्रार्थना में कहा गया है, "बिस्मिल्ला हिर् रहमा निर्रहीम" (पहले ही पहल नाम लेता हूं अल्लाह का, जो निहायत रहम वाला मेहरबान है, इत्यादि....)। उससे पहले भक्त यह संकल्प करता है, "अऊजू बिल्लाहि मिनिश्शैता निर्रजीम" (शरण लेता हूं मैं अल्लाह की, पापात्मा, शैतान से बचने के लिए) अपने भीतर शैतान पर प्रभुत्व स्थापित किये बिना ईश्वर की प्राप्ति असंभव है।

शैतान को मूलत: स्वर्ग में प्रमुख देवता का ऊंचा स्थान प्राप्त था और उसका नाम अजाजील था। इस्लाम में उसे इबलिस कहा गया। इबलिस अपने स्थान से च्युत हो गया और उस पर ईश्वर का शाप पड़ा।

हुआ यह था कि ईश्वर ने हाथ में मिट्टी लेकर उससे मनुष्य का निर्माण किया और उसमें आत्मा फूंक दी। जैसे ही सृष्टि का यह आदि-मानव अथवा आदम बनकर तैयार हुआ, वैसे ही ईश्वर ने देवताओं को उसके सामने झुकने और उसे प्रणाम करने का आदेश दिया। उसने कहा कि भले ही आदम का निर्माण मिट्टी से हुआ हो, इसमें दैवी स्फुल्लिग है। इबलिस के अतिरिक्त अन्य सभी देवताओं ने ईश्वर के आदेश का पालन किया।

इबलिस ने मिट्टी से बने मरणधर्मा जीव के समक्ष सिर झुकाने से इनकार कर दिया। उसने दंभपूर्वक कहा, "तूने मिट्टी और सांचे से जिस मरणधर्मा जीव की सृष्टि की है, उसके सम्मुख मैं कभी प्रणाम नहीं करूंगा....। मैं उसकी अपेक्षा

श्रेष्ठ हूं, क्योंकि तूने मुझे अग्नि से बनाया और उसको मिट्टी से।" इबलिस की अवज्ञा को ईश्वर क्षमा नहीं कर सकता था। उसने इबलिस को कयामत के दिन तक के लिए स्वर्ग से नीचे धकेल दिया, परंतु उसे जीवित छोड़ दिया, जिससे वह मनुष्यों को ललचा सके और उनकी परीक्षा ले सके।

आदम (Adam) और हव्वा (Eve) का निर्माण करने के बाद ईश्वर ने उन्हें आदेश दिया कि वे स्वर्ग के उद्यान में चले जायें और वहां विभिन्न प्रकार के वृक्षों के फल तोड़कर खायें, लेकिन उद्यान में एक वृक्ष ऐसा था, जिसका फल खाने के लिए ईश्वर ने आदम और हव्वा को मना कर दिया। आदम और हव्वा के पीछे-पीछे इबलिस भी उद्यान में पहुंच गया और उसने उनके मन में वर्जित फल का प्रलोभन उत्पन्न कर दिया। आदम और हव्वा ने जैसे ही वह फल चखा, वैसे ही उनका अबोध मन वासना से मलिन हो गया। उनमें स्त्री-पुरुष भाव उत्पन्न हो गया और अपने नंगा होने की लज्जा भी उत्पन्न हो गयी। इसके साथ ही उन्हें पृथ्वी पर धकेल दिया गया और वे अपने साथ हिंसा का बीज ले आये, जिसके फलस्वरूप मनुष्य जाति आज तक आपस में लड़ती रहती है।

इसमें तो कोई संदेह नहीं कि मनुष्य के भीतर एक दैवी तत्त्व है, परंतु उसके मन का एक हीन और वासनामूलक पक्ष भीं है और यही वह पक्ष है, जिस पर शैतान पलता तथा मनुष्य की चेतना पर अधिकार कर लेता है। वह मनुष्यों को ऐन्द्रिक सुखों और सांसारिक पदार्थों की ओर ले जाता है।

शैतान को सभी धर्मों में धिक्कारा गया और उसकी निंदा की गयी, परंतु महान सूफी विचारकों ने उसके भीतर कुछ गुणों की खोज की और उसको गुरु के रूप में स्वीकार कर लिया। इबलिस के बारे में सूफी मत की बहुत सुंदर व्याख्या पीटर जे. ऑन (Peter J. Awn) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'शैतान की त्रासदी और मुक्ति: सूफी मनोविज्ञान में इबलिस' में की है। डॉ. ऑन का विचार है कि प्रसिद्ध सूफी संत मंसूर की दृष्टि में इबलिस के साथ बुरी बीती। मंसूर कहते हैं कि "स्वर्ग के निवासियों में इबलिस के समान दूसरा एकेश्वरवादी कोई न था....। ईश्वर ने उससे कहा, 'झुको' उसने उत्तर दिया, 'किसी दूसरे के सामने हर्गिज नहीं।' ईश्वर ने उससे कहा, 'यदि कहना न मानने के कारण मैं तुम्हें शाप दूं, क्या तब भी नहीं?' इबलिस के मुंह से चीख निकली, 'किसी दूसरे के सामने तो हर्गिज नहीं झुकूंगा'।

शैतान की पूजा

शैतान को मनुष्य ने न तो कभी पसंद किया और न स्वीकार ही, तथापि व उससे हमेशा डरता रहा और उसे चाहे अच्छा माने या बुरा, मनुष्य सदा से शैता के प्रलोभन में आकर अपनी ऐन्द्रिक वासनाओं और जीवन के भौतिक पदार्थों लिप्त होता रहा। मनुष्य ने धीरे-धीरे जीवन की सामग्री और सांसारिक वरदानों व लिए ईश्वर से प्रार्थना करना सीख लिया तथा सुखी जीवन के मार्ग की बाधाओं व निवारण, शत्रुओं के विनाश और प्रकृति के रोष से बचाव के लिए वह शैतान व आह्वान करने लगा।

विभिन्न धर्मों में शैतान के भयावह चेहरे की परकल्पना विभिन्न प्रकार से की गयी है।

शैतान को प्रसन्न करने के लिए मनुष्यों और पशुओं की बलि दी जाने लगी। मुक्त यौनाचार, मदिरा तथा अन्य मादक द्रव्यों जादू-टोने और परामानसिक शक्तियों का प्रयोग किया जाने लगा। भारत में तंत्र-विद्या के अंतर्गत इन समस्त तत्त्वों का समावेश मिलता है। अपने यजमान के शत्रुओं का नाश करने के लिए तांत्रिक पुरोहित पैशाचिक शक्तियों का आह्वान करते हैं। वे श्मशान में तांत्रिक क्रियाएं करते हैं। परामानसिक शक्तियों के प्रयोग, अक्षत-योनि कुमारियों के साथ यौन संबंध, मनुष्यों और पशुओं की बलि तथा मदिरा और गांजा तथा अफीम जैसे मादक पदार्थों के सेवन का सहारा लेते हैं।

युरोप में 17वीं शताब्दी में शैतान-पूजा फ्रांस में अपने चरमोत्कर्ष पर थी। उसे सबसे बड़ा धक्का लुई चौदहवें के काल में उस समय लगा, जब लुई ने अप्रसन्न होकर शैतान के उपासकों के सर्वनाश का आदेश दे दिया था। लुई की अप्रसन्नता का कारण यह था कि उसने अपनी प्रेमिकाओं में से जिस प्रेमिका का परित्याग कर दिया था, उसने राजा का प्रेम पुनः प्राप्त करने के लिए एक पुरोहित से पेरिस के एक भूमिगत कक्ष में अपनी नग्न काया पर शैतान की प्रसन्नता के लिए, प्रार्थना तथा अन्य क्रियाएं करायीं। यह अनुष्ठान कई चरणों में संपन्न हुआ और प्रत्येक चरण के अंत में एक जीवित बालक की बलि चढ़ाई जाती थी।

विश्व के प्रायः सभी परंपरागत समाजों में, भारत में भी, शैतान की पूजा प्रचलित रही है। मेघालय की खासी पहाड़ियों में एक परंपरागत जाति स्थानीय भाषा में शैतान को थ्लेन नाम से पुकारती है। इस जाति के लोगों ने ईसाई धर्म को स्वीकार कर लिया है, फिर भी उन्होंने थ्लेन की पूजा बंद नहीं की है। पूजा का यह अनुष्ठान पूर्णतः गोपनीय रीति से किया जाता है।

शैतान का चर्च

युरोप और अमरीका में शैतान पूजा नयी नहीं है। ईसाई धर्म के प्रचार से पहले युरोप में प्राकृतिक शक्तियों की उपासना प्रचलित थी। लोग आंधी, पानी, बिजली, आग और हिंसक पशुओं से डरते थे तथा उन्हें देवता मानकर विभिन्न प्रकार के कर्मकांड द्वारा उन्हें संतुष्ट करने की चेष्टा करते थे। वें उनकी प्रसन्नता के लिए मनुष्यों और पशुओं की बलि भी चढ़ाते थे।

पश्चिमी देशों में ईसाई धर्म के उदय के साथ ही धार्मिक मंच पर शैतान भी प्रकट हो गया। वहां ईसा और जेहोवाह के साथ-साथ लूसीफर को भी स्थान मिला। यह सही है कि उसे दैवी नहीं माना गया। वहां शैतान की कल्पना भयानक दैत्य के रूप में की गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि एक ओर ईसाई लोग ईश्वर की उपासना करने लगे और उनके मन में यह विश्वास रहा कि ईसा मसीह उनके मुक्तिदाता हैं, दूसरी ओर उनमें इतना साहस न था कि वे लूसीफर की उपेक्षा कर सकते। अंततः वे लूसीफर नामक शैतान को संतुष्ट करने के लिए पारंपरिक कर्मकांड में भी लिप्त रहे।

पश्चिमी जगत के लोग स्वभावतः औद्योगिक क्रांति के पश्चात् एक दोहरी जिंदगी जीने के अभ्यस्त हो गये। उनकी आस्था और उनके व्यवहार के बीच एक गहरी खाई का निर्माण हो गया। ईसाई धर्म न तो हिंसा की अनुमति देता था, न राजनीतिक सत्ता तथा धन के संग्रह की, किंतु व्यवहार में ये दोनों हिंसा, सत्ता तथा धन—पाश्चात्य जीवन के अभिन्न और मूलभूत अंग बन गये। ईसाई जगत दिखावे के लिए ईश्वर के प्रति श्रद्धा व्यक्त करता रहा परंतु वास्तव में वह लूसीफर का शिकार हो गया तथा घोर पदार्थवाद और ऐन्द्रिक वासनाओं में लिप्त रहने लगा।

इस द्वैत ने लोगों क मन में एक व्यापक अपराध बोध उत्पन्न कर दिया, जिसके कारण उनके भीतर मानसिक दबाव, तनाव और हीनता का भाव बना रहने लगा। इस परिस्थिति ने एक नयी मानसिकता को जन्म दिया, जो इस अनुभूति में से उत्पन्न हुई थी कि दैवी नियमों का पालन मनुष्य की प्रकृति के विरुद्ध तथा उनके लिए असंभव है। साथ ही साथ यह चेतना भी उत्पन्न हुई कि ईश्वर मनुष्य को अपने मार्ग पर अर्थात् ईश्वर की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करने वाले विभिन्न धर्मों द्वारा सिखाये गये सदाचार के मार्ग पर चलाने में असमर्थ रहा है। व्यवहारिक अनुभव से यह सिद्ध हो गया कि शैतान ईश्वर की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है

शैतान के चर्च में नये उपासक को दीक्षा दी जा रही है (ऊपर)
शैतान के चर्च का संस्थापक एन्टन स्जांडोर ला वे (बायें)

और [illegible] कि वह मानव जाति को अपने पीछे-पीछे यथार्थवाद तथा शक्ति, [illegible] और विलासिता के मार्ग पर ले जा सकता है।

[illegible] एन्टन स्जान्डोर ला वे के रूप में एक गधागत प्रचलता और [illegible] जिसने सन् 1966 में सानफ्रांसिस्को में शैतान के चर्च की स्थापना की [illegible] धर्म-ग्रंथ बाइबिल का एकदम उल्टा बाइबिल [illegible] डाला। ला वे शैतान का पुजारी बनने से पहले सर्कस के पशुओं को प्रशिक्षण [illegible] था, सम्मोहन विद्या का अभ्यास करता था और पुलिस का फोटोग्राफर था। [illegible] जन्म सन् 1931 में शिकागो में हुआ था। 6 फुट लंबा ला वे [illegible] आकर्षक व्यक्तित्व का धनी है। उसने अपना सिर मुंडा रखा है और [illegible] चर्च के प्रधान पुरोहित के रूप में काले वस्त्र धारण करता है। वह [illegible] चांदी की जंजीर में एक शैतानी प्रतीक पहनता है। वह दो विवाह [illegible] उसकी वर्तमान पत्नी [illegible]

चर्च के सदस्यों की पांच श्रेणियां होती हैं और निम्नतम श्रेणी का सदस्य उच्चतर श्रेणियों की ओर बढ़ने की चेष्टा करता है। ये श्रेणियां हैं—नौसिखिया, सयाना अथवा चुड़ैल, सम्मोहक अथवा सम्मोहिका, जादूगर अथवा जादूगरनी और परम। ला वे शैतान के चर्च का परम पुजारी है, प्रधान पुरोहित है। चर्च के संचालन के लिए 9 सदस्यों की परिषद् होती है, जिसका मुखिया ला वे है।

सिद्धांत

शैतान के चर्च की एक विस्तृत संहिता है, जिसमें उसके सिद्धांतों का विवेचन किया गया है। बुनियादी तौर पर शैतानवाद सत्ता की प्राप्ति अथवा स्वार्थ-सिद्धि को बुराई नहीं मानता क्योंकि ये समस्त बुद्धिमान मनुष्यों के लिए उपयुक्त और उचित लक्ष्य माने गये हैं। शैतानवादी बाइबिल की प्रमुख शिक्षाएं 9 शैतानवादी वक्तव्यों में निहित हैं, जिन्हें ईसा मसीह के 10 आदेशों का घोर विकृत रूप माना जा सकता है।

1. शैतान संयम के स्थान पर वासनाओं में लिप्त होने का आदेश देता है।
2. शैतान आध्यात्मिक कल्पनाओं के स्थान पर जगत के भौतिक अस्तित्व का प्रतिनिधित्व करता है।
3. शैतान पाखंड-पूर्ण आत्म-श्लाघा के स्थान पर शुद्ध विवेक का प्रतिनिधि है।
4. शैतान कृतघ्न लोगों के ऊपर प्रेम लुटाने के बजाय उन लोगों पर दया प्रदर्शित करने का मार्ग दिखाता है, जो वास्तव में दया के पात्र हैं।
5. शैतान आततायी के सम्मुख दूसरा गाल पेश करने के बजाय प्रतिशोध का प्रतिनिधित्व करता है।
6. शैतान अर्ध-विक्षिप्त और परजीवी लोगों के प्रति चिंतन व्यक्त करने के बजाय जिम्मेदार लोगों के प्रति जिम्मेदारी का भाव सिखाता है।
7. शैतान इस धारणा का प्रतिनिधित्व करता है कि मनुष्य अन्य पशुओं की भांति एक पशु है। कभी-कभी वह उनकी अपेक्षा अच्छा हो जाता है, परंतु अधिकांशतः वह चौपायों की अपेक्षा बुराई अधिक करता है, क्योंकि उसके इस मिथ्या दावे ने उसे बर्बरतम पशु बना डाला है कि उसका 'दैवी आध्यात्मिक विकास' हुआ है।
8. शैतान शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किये गये उन सब कार्यों का प्रतिनिधित्व करता है, जिन्हें ईश्वर के उपासक पाप कहते हैं।
9. शैतान चर्च का श्रेष्ठतम मित्र है क्योंकि उसने आरंभ से लेकर अंत तक चर्च को व्यस्त रखा है।

शैतान के चर्च के सदस्य उसके छः मूलभूत तत्त्वों से आकर्षित और परिचालित होते हैं। इन छः तत्त्वों का उल्लेख रेन्डाल एच. आलफ्रेड ने चार्ल्स

वाई. ग्लौक और राबर्ट एन. बेल्लांह द्वारा संपादित पुस्तक 'दी न्यू रिलीजियस कॉन्शियसनेस' में सम्मिलित अपने निबंध में किया है। ये तत्त्व हैं—सुखवाद, जादू, हिंसा, अनीश्वरवाद, युग धारणा और चमत्कारपूर्ण व्यक्तित्व की कल्पना।

सुखवाद—शैतानवाद के दर्शन में सुखवाद ने परोपकारवाद का स्थान ले लिया है। सुखवाद का सार-तत्त्व शारीरिक, मानसिक और विस्तृत भावनाओं, इच्छाओं तथा वासनाओं में लिप्त करना है। उसमें यौन स्वेच्छाचार और यौन तृप्ति पर विशेष बल दिया जाता है। वह स्वार्थपूर्ण सुखवाद और संसार के आम लोगों के जीवन में व्याप्त, मदिरा, स्त्री और धन की लालसा को सही मानता है।

जादू—जादू की दो श्रेणियां हैं। महत्तर जादू और हीनतर जादू। महत्तर जादू में दूसरों को वश में करना और उनको शाप देना शामिल है तथा हीनतर जादू में दूसरों के व्यवहार को अपनी इच्छाशक्ति से अपने अनुकूल मोड़ना। जादू के लिए कुशलता, उपयुक्त वातावरण और सयाने अथवा चुड़ैल की जादुई क्षमता की आवश्यकता होती है। आमतौर पर जादू-टोना चर्च के कर्मकांड-कक्ष में किया जाता है। यह एक शक्तिशाली मनोवैज्ञानिक नाटक का रूप ले लेता है, जिसके लिए संगीत, स्वर, दृश्य और उत्तेजक वातावरण के कलात्मक सम्मिश्रण की आवश्यकता होती है, जैसे वाद्य-यंत्र, घंटियां, घंटे, काली और सफेद मोमबत्तियां, काला और लाल पुता हुआ कर्मकांड-कक्ष, प्रभावशाली पोशाकें, टोपियां, मुखौटे और आंखों तथा कानों को सुन्न कर देने वाले दृश्य एवं स्वर।

हिंसा और अतिचार—हिंसा और अतिचार शैतान पूजा का प्रमुख अंग हैं। शैतान हमेशा से प्रलोभन अर्थात् सांसारिक और ऐन्द्रिक इच्छाओं का प्रतिनिधित्व और प्रतीक रहा है। वह ईश्वर में आस्था रखने वाले धर्मों की समस्त शिक्षाओं का प्रतिवाद करता है। शैतानवादी धर्म तथा कर्मकांड में हिंसा और अतिचार बुनियादी तौर पर नर्क के चार प्रमुख दैत्यों—शैतान, लूसीफर, बेलियल और लेवियादन तथा अनेक अन्य दैत्यों और दुरात्माओं के आह्वान का रूप ग्रहण कर लिया है। दैत्य को प्रसन्न करने और उससे अपनी इच्छाएं पूरी कराने के लिए हिंसा और अतिचारपूर्ण कर्म की आवश्यकता होती है, जैसे—मनुष्य और पशुओं का बलिदान, दैत्य को रक्त भेंट करना, यौन-संभोग, ज्योतिष, जादू-टोना।

अनीश्वरवाद

शैतानवाद ईसाई धर्म के जुए से मुक्ति का उपदेश देता है। शैतानवाद अपने अनुयायियों को आधुनिक समाज की समस्त सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संस्थाओं, प्रथाओं, परंपराओं और मूल्यों के प्रभाव से भी मुक्त करना चाहता है, क्योंकि ये सभी ईसाई-नीतिशास्त्र पर आधारित हैं। शैतानवाद मूलतः अनीश्वरवादी है और उसका प्रयोजन वर्तमान व्यवस्था तथा मूल्यों का उल्लंघन करता है—विशेषतः नैतिक और धार्मिक क्षेत्रों में।

युग-धारणा

शैतानवाद की मूल शक्ति युग-धारणा में निहित है। युग-धारणा का अर्थ

है—नये युग के प्रवर्तन तथा आगमन में आस्था। शैतानवाद के मूल ग्रंथ शैतानी बाइबिल के आरंभ में ही यह बात स्पष्ट कर दी है :—झुटपुटा समाप्त हो गया है। रात के अंधेरे को चीरकर एक नये प्रकाश की आभा का उदय हो रहा है और एक बार फिर लूसीफर यह घोषणा करने के लिए उठ खड़ा हुआ है कि 'यह शैतान का युग है और पृथ्वी पर शैतान का शासन है।' अन्यायी देवताओं की मृत्यु हो चुकी है। यह जादू और पवित्र विवेक का सवेरा है। भौतिकता की विजय होगी और उसके नाम पर एक महान चर्च का निर्माण तथा उसकी प्रतिष्ठा होगी। मनुष्य की मुक्ति अब आत्म-बलिदान और त्याग पर निर्भर नहीं रहेगी। यह जगत काया का जगत कहलायेगा तथा उसी जीवन में महानतम और शाश्वत आनंद की प्राप्ति होगी।

चमत्कारपूर्ण व्यक्तित्व की कल्पना

शैतान के चर्च और उसकी उप-संस्कृति की महान पुरोधा, सर्वोच्च पुरोहित और मसीहा का चमत्कारपूर्ण व्यक्तित्व शैतानवाद का अंतिम किंतु शायद सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण आधार है। मसीहा की सत्ता उसकी जादुई शक्तियों, रहस्यों के ज्ञान और नायक के रूप में उसकी मान्यता निर्भर है। ला वे का अतीत बहुरंगी रहा है। वह अपनी किशोरावस्था में संगीत की प्रतिभा से संपन्न था, सर्कस में हिंसक पशुओं को प्रशिक्षण देता था—विशेषत: शेरों का प्रशिक्षक था। वह केलियोप नामक वाद्य बजाता था, हस्तरेखा विज्ञान का ज्ञाता और सम्मोहनकर्ता था। वह पुलिस और बीमा कंपनी में फोटोग्राफर रह चुका है तथा मदिरा पार्टियों में वाद्य-वादन एवं अस्पतालों में सम्मोहन-विद्या द्वारा रोगियों की पीड़ा कम किया करता था। ये सब काम छोड़कर उसने सन् 1966 में शैतान के चर्च की स्थापना की। वह सशक्त आवाज और खोजी दृष्टि का धनी है। जब वह अपने घुटे हुए सिर पर सींगदार टोपी और शरीर पर लाल अस्तर वाला लंबा काला चोगा पहन लेता है, तब चर्च में उपस्थित शैतान के उपासकों के मन में उसके प्रति भय-मिश्रित आदर उत्पन्न हो जाता है।

शैतान के चर्च में आजीवन सदस्य होने का शुल्क 20 डॉलर है। 10 हजार सदस्य होने के बाद ला वे ने सदस्यों की संख्या बढ़ाने से इनकार कर दिया। आजीवन सदस्यों के अतिरिक्त उसके हजारों सक्रिय सदस्य हैं, जो 10 डॉलर प्रति सदस्य वार्षिक शुल्क देते हैं।

शैतान इस जगत का स्वामी है

शैतानवाद इस जगत को ही अंतिम सत्य मानता है तथा वह इससे परे किसी अन्य जगत की सत्ता या अस्तित्व में विश्वास नहीं करता। अत: वह किसी परा-मानसिक सत्ता के अस्तित्व को नहीं मानता तथा किसी परा चेतना अस्तित्व पर भी विश्वास नहीं है। वह कहता है कि मनुष्य को अपना जीवन सहज और नितांत मुक्त अंत:करण द्वारा भोगना चाहिए। इस जगत के परे कुछ नहीं है। यह

अर्थात् भोग पूर्ण जीवन का अनुसरण करने वाले लोगों के मन में आत्मविश्वास उत्पन्न हो सके। ला वे हमारे पाखंडी जीवन पर चोट करता है और हम को यथार्थ को स्वीकार करने का आग्रह करता है। वह कहता है कि जब हमने ईश्वरीय अथवा दैवी मार्ग को छोड़कर जीवन में शैतान का मार्ग अपना ही लिया है तो हमें शैतान के प्रति अपनी आस्था की घोषणा भी कर देनी चाहिए। वह हमारे मन में यह चेतना जगाना चाहता है कि हम केवल इस कारण मानसिक रूप से अस्वस्थ हो गये हैं क्योंकि एक ओर तो हम विषय-भोगों और ऐन्द्रिक सुखों में पूरी तरह लिप्त हो गये हैं, दूसरी ओर हम मानसिक स्तर पर यही मानते आ रहे हैं कि इस जगत की वस्तुओं में लिप्त होना पाप है।

ला वे कहता है कि हमें अपने कर्म और चिंतन के बीच इस द्वैत से छुटकारा प्राप्त करना चाहिए। जीवन की इस विसंगति को दूर करने तथा अपराध-बोध से मुक्त होकर अपने मन को दुविधा से छुटकारा दिलाने के लिए ला वे शैतान के प्रति आस्था प्रकट करने की सलाह देता है।

एक झांकी

शैतान के चर्च का अंतर्राष्ट्रीय प्रधान कार्यालय सानफ्रांसिस्को के एक छोर पर पहाड़ी की तलहटी में दूसरे घरों से कुछ फुट की दूरी पर बने विक्टोरिया-युगीन तिमंजिले मकान में स्थित है। शैतान के चर्च का सर्वोच्च पोप ला वे इसी घर में निवास करता है। उसका परिवार शैतान के चर्च और शैतानी उप-संस्कृति का अभिन्न अंग है।

शैतान का चर्च काले रंग से पुता है तथा इसे काला चर्च भी कहा जाता है, परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि यह अमरीका के नीग्रो नस्ल के काले लोगों का चर्च है, हालांकि वे भी इस चर्च में मुक्त रूप से प्रवेश पा सकते हैं। इसके अधिसंख्य सदस्य गोरे हैं।

शुक्रवार को जब ये लोग सामूहिक उपासना के लिए इकट्ठे होते हैं, तब काले चोगे पहनते हैं। डरने की कोई बात नहीं है, क्योंकि चर्च में एकत्र सभी पशु चाहे वे सींग-पूंछ वाले हों या बिल्ली, मेंढ़े अथवा उल्लू जैसे दिखायी देते हों, मनुष्य होते हैं। वे अपने चेहरों पर मुखौटे पहने हुए हैं। शैतान के मंदिर में उसके पुजारी और भक्त ठीक उसी प्रकार दैत्यों और पशुओं के मुखौटे लगाते हैं, जिस प्रकार दूसरे लोग अपनी वास्तविक पहचान और असली प्रयोजनों को छुपाने के लिए ईश्वर के मंदिर में जाते समय अपने चेहरों पर मानवीय मुखौटे लगा लेते हैं। शैतान के उपासकों में स्त्रियों की संख्या भी काफी है और उनमें से अधिकांश सुंदर युवतियां होती हैं। शैतान के सभी उपासक अपने गले में शैतान का प्रतीक चिह्न धारण करते हैं, जिस पर एक पंचमुखी सितारे के बीच मेंढ़े का सिर बना होता है।

आइये अब शैतान की पूजा का दृश्य देखते हैं। पूजा का समय हो गया है। तैयारियां हो रही हैं। रोशनी बहुत धीमी कर दी गयी है, पूजागृह वैगनर के संगीत

पुनर्जीवन का इतालवी मसीहा : सिरागुसा

"मिट्टी अर्पित है मिट्टी को और आत्मा अर्पित आत्मा को" —इस शीर्षक का एक पत्र इटली के नगर ट्रेन्टिनो के बाहर पड़े प्लास्टिक के थैले के साथ बंधा हुआ मिला। पत्र में कहा गया था, "दया करके इसको दफना दीजिये। इसका नाम 'अच्छाई की बेटी' है।"

और.... उस थैले में एक सड़ी हुई लाश थी।

यह घटना 27 जून, 1978 की है। इटली की पुलिस इस लाश और उसके साथ बंधे रहस्यमय तथा दार्शनिक पत्र की गुत्थी सुलझाने का भरसक प्रयास करती रही, मगर कहीं कुछ सूत्र ही न मिलता था।

अचानक दिसंबर, 1978 में इटली की पुलिस को दक्षिणी फ्रांस के प्रसिद्ध नगर नाइस की पुलिस की ओर से एक संदेश मिला, जिसमें कहा गया था कि इटली के एक दंपत्ति को कलाइयों की नसें काटकर आत्महत्या करने की चेष्टा में पकड़कर नाइस के मानसिक चिकित्सालय में भर्ती किया गया था। वहां उन्हें नींद की गोलियां दी गयीं, जिन्हें वे इकट्ठा करते रहे और एक दिन पति-पत्नी दोनों ने वे गोलियां खाकर आत्महत्या की दूसरी कोशिश की। इस बार पत्नी का देहांत हो गया और पति को बचा लिया गया है, उसे इटली वापस ले जाइये।

ब्रह्मांडीय बंधुत्व

इटली की पुलिस उस व्यक्ति को नाइस से रोम ले गयी और उसने उससे उसके और उसकी पत्नी के बारे में पूछताछ शुरू कर दी। उसने बताया कि उसका नाम सेसारे पाताने है, वह पेशे से नाई है और उसकी उम्र 33 वर्ष है। उसकी पत्नी का नाम मार्घेरिता था।

सेसारे ने पुलिस को बताया कि वह स्वयं, उसकी पत्नी और उसका बड़ा भाई 38 वर्षीय मारियानो एक मायावी संप्रदाय 'कॉस्मिक ब्रदरहुड' यानी ब्रह्मांडीय बंधुत्व के अत्यंत निष्ठावान सदस्य थे। उन लोगों का घर गारदा झील के समीप वेदीजोल में है तथा वे तीनों मई, 1978 में घर छोड़कर निकल गये थे।

अब पुलिस ने सेसारे के भाई मारियानो की खोज की और उसे ढूंढ निकाला। सेसारे और मारियानो दोनों से पूछताछ की जाती रही। मारियानो पाताने ने पुलिस को बताया कि कॉस्मिक ब्रदरहुड का गुरु यूजिनियो सिरागुसा है। 62 वर्षीय

"जय बोलो शैतान की... शैतान की जय हो... शैतान जिंदाबाद" के जयकारों से शैतान की पूजा में लीन उसके उपासक

पूजा समाप्त हो गयी है, अब एक-एक उपासक आगे आकर शैतान के सम्मुख अपनी इच्छाएं प्रकट करता है। एक सयाना आगे आता है और अपने शत्रु का नाम लेकर उस पर शापों की बौछार करता है। पुजारी मंत्रोच्चार करते हैं। संगीत का स्वर ऊंचा उठता है। राइफल से गोली दागी जाती है, तेज आवाज होती है और "शैतान की जय" के नारे के साथ शाप शत्रु के दरवाजे पर भेज दिया जाता है।

शैतान के अन्य पुजारी

ला वे द्वारा संचालित शैतान के चर्च के अतिरिक्त संसार के विविध देशों में अन्य अनेक शैतान-भक्त समूह हैं। यह बात स्पष्ट तौर पर समझ लेनी चाहिए कि दैत्य अथवा शैतान के अस्तित्व को प्रायः संमस्त ईसाई संप्रदायों ने मान्यता प्रदान की है। ■■

डिजायरी की मृत्यु के बाद सेसारे, मारियानो और मार्घेरिता एक महीने तक बारी-बारी से डिजायरी की लाश के सामने बैठकर दिन-रात प्रार्थना करते रहे। उनके मन में पूर्ण आस्था थी कि डिजायरी जी उठेगी, मगर लाश बुरी तरह सड़ने लगी। आखिरकार उसमें जीवन लौटने की आशा छोड़कर डिजायरी के माता-पिता और ताऊ ने उसे प्लास्टिक के एक बड़े से थैले में रखा और घर से निकल पड़े। उन्होंने वह थैला एक पत्र के साथ ट्रेन्टिनो के बाहर छोड़ दिया।

इसके बाद मारियानो अपने घर लौट गया। सेसारे और मार्घेरिता अपनी अपराध-भावना से मर्माहत तथा अपनी बेटी के विछोह से दुःखी होकर इधर-उधर भटकते रहे। अंततः वे दक्षिण फ्रांस के नाइस नगर जा पहुंचे, जहां उन्हें आत्महत्या के प्रयास में पुलिस ने पकड़कर मानसिक चिकित्सालय में भर्ती किया और आत्महत्या के दूसरे प्रयास में मार्घेरिता ने जान गंवा दी।

मसीहा पर मुकदमा

यह लोमहर्षक दास्तान सुनकर पुलिस ने तथाकथित मसीहा सिरागुसा को गिरफ्तार करके सिसिली की जेल में डाल दिया। सेसारे और मारियानो को भी जेल में रखा गया। अढ़ाई महीने जेल में काटने के बाद सिरागुसा 5 फरवरी को जमानत पर रिहा हो गया। ठीक उसी दिन मारियानो ने जेल की अपनी कोठरी में छत के पंखे से बिस्तर की चादर बांधी और उसमें फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली।

दूसरे मसीहा के जन्म के लिए संभोग

सिरागुसा कोई कच्चा मसीहा नहीं था। वह कलियुगी मसीहा था तथा 'संभोग से समाधि' की विद्या का गुरु था और 62 वर्ष की आयु में युवतियों के साथ रति-क्रीड़ा करता था।

डिजायरी की हत्या के मामले में जांच चल ही रही थी कि कॉस्मिक ब्रदरहुड के दो अन्य सदस्यों ने इस आत्मघोषित मसीहा के बारे में कुछ नये और सनसनीखेज रहस्यों का उद्घाटन किया। ये दोनों सदस्य थे—25 वर्षीया संभ्रांत अमरीकी नागरिक लेसली हुकर और उसका 28 वर्षीय धनी पति कैली हुकर।

कैली दंपति ने सिसिली की अदालत में सिरागुसा के खिलाफ एक मुकदमा दायर किया। उन्होंने आरोप लगाया है कि सिरागुसा ने कैली और लेसली के मस्तिष्क में यह बात बिठा दी थी कि शीघ्र ही प्रलय होने वाली है, जिसमें समूचा संसार नष्ट हो जायेगा, मगर वे लोग बच सकते हैं, जो इस मसीहा की सीख के अनुसार आत्मशुद्धि द्वारा मृत देह में पुनर्जीवित होने की विद्या प्राप्त कर लेंगे।

अपने आवेदन में कैली ने कहा कि सिरागुसा ने उसे आदेश दिया कि तुम अकेले ही उत्तर-पूर्व इटली के चेसेना जनपद में जाकर वहां जेरिको के आप्त-पुरुष की तलाश करो। कैली ने तनिक आनाकानी न की और वह गुरु के आदेश को ब्रह्मवाक्य मानकर अपनी पत्नी लेसली को गुरु के चरणों में ही छोड़कर अकेला चेसेना चला गया। वास्तव में सिरागुसा ने कैली को झांसा दिया था, इस बहाने वह

गुरु-संस्कृतियां अंधविश्वास तथा सम्मोहन के वृक्ष पर लताओं की तरह फलती-फूलती हैं। चित्र में एक व्यक्ति को मानसिक उलझनों से मुक्त किया जा रहा है।

उसे वहां से टरकाना चाहता था, जिससे कि खूबसूरत लेसली के साथ स्वच्छंदतापूर्वक संभोग कर सके।

अब सिरागुसा ने अपनी शक्ति लेसली पर केन्द्रित की और उसके दिमाग में यह बात ठूंस-ठूंसकर भर दी कि संसार को बचाने के लिए नये मसीहा की खोज निहायत जरूरी है, उधर कैली उस आप्त-पुरुष की खोज चेसेना जनपद में कर रहा है, इधर तुम्हें उसे अपनी कोख से जन्म देने की कोशिश करनी चाहिए।

सिरागुसा ने लेसली के मन में यह बात पूरी तरह बिठा दी कि उसका जन्म नये मसीहा को अपनी कोख में धारण करने के लिए ही हुआ है, अतः उसको अपना जन्म कृतार्थ करना चाहिए, यह उसके लिए बहुत ही गौरव की बात होगी क्योंकि नये मसीहा की मां होने के कारण सारा संसार उसकी पूजा ईसा मसीह की मां, कुवांरी मेरी की तरह करेगा।

सिरागुसा इंसान नहीं, पूरा शैतान था। उसने लेसली के मन में इस बारे में कोई भ्रम नहीं छोड़ा कि नये मसीहा का पिता पुराना मसीहा यानी वह स्वयं ही हो सकता है। इस सब का परिणाम यह हुआ कि लेसली स्वेच्छा से और प्रसन्नतापूर्वक नये मसीहा को अपनी कोख में धारण करने के अनुष्ठान के लिए तैयार हो गयी। यह अनुष्ठान और कुछ नहीं सिरागुसा की यौन वासना की तृप्ति के लिए किया गया संभोग था। लेसली के दिमाग में यह बात बैठ चुकी थी कि मसीहा के साथ संभोग निश्चय ही एक महान सम्मान है और समाधि का सुगमतम मार्ग भी, अतः वह सिरागुसा के साथ संभोग करते समय दिव्य अनुभूतियों और समाधि के सपनों में खोयी रहती और स्वयं को मूर्ख बनाये जाती कि वह सचमुच पवित्रतम कार्य कर रही है।

डिजायरी की मृत्यु के बाद सेसारे, मारियानो और मार्घेरिता एक महीने तक वारी-वारी से डिजायरी की लाश के सामने बैठकर दिन-रात प्रार्थना करते रहे। उनके मन में पूर्ण आस्था थी कि डिजायरी जी उठेगी, मगर लाश बुरी तरह सड़ने लगी। आखिरकार उसमें जीवन लौटने की आशा छोड़कर डिजायरी के माता-पिता और ताऊ ने उसे प्लास्टिक के एक बड़े से थैले में रखा और घर से निकल पड़े। उन्होंने वह थैला एक पत्र के साथ ट्रेन्टिनो के बाहर छोड़ दिया।

इसके बाद मारियानो अपने घर लौट गया। सेसारे और मार्घेरिता अपनी अपराध-भावना से मर्माहत तथा अपनी बेटी के विछोह से दु:खी होकर इधर-उधर भटकते रहे। अंततः वे दक्षिण फ्रांस के नाइस नगर जा पहुंचे, जहां उन्हें आत्महत्या के प्रयास में पुलिस ने पकड़कर मानसिक चिकित्सालय में भर्ती किया और आत्महत्या के दूसरे प्रयास में मार्घेरिता ने जान गंवा दी।

मसीहा पर मुकदमा

यह लोमहर्षक दास्तान सुनकर पुलिस ने तथाकथित मसीहा सिरागुसा को गिरफ्तार करके सिसिली की जेल में डाल दिया। सेसारे और मारियानो को भी जेल में रखा गया। अढ़ाई महीने जेल में काटने के बाद सिरागुसा 5 फरवरी को जमानत पर रिहा हो गया। ठीक उसी दिन मारियानो ने जेल की अपनी कोठरी में छत के पंखे से विस्तर की चादर बांधी और उसमें फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली।

दूसरे मसीहा के जन्म के लिए संभोग

सिरागुसा कोई कच्चा मसीहा नहीं था। वह कलियुगी मसीहा था तथा 'संभोग से समाधि' की विद्या का गुरु था और 62 वर्ष की आयु में युवतियों के साथ रति-क्रीड़ा करता था।

डिजायरी की हत्या के मामले में जांच चल ही रही थी कि कॉस्मिक ब्रदरहुड के दो अन्य सदस्यों ने इस आत्मघोषित मसीहा के वारे में कुछ नये और सनसनीखेज रहस्यों का उद्घाटन किया। ये दोनों सदस्य थे—25 वर्षीया संभ्रांत अमरीकी नागरिक लेसली हुकर और उसका 28 वर्षीय धनी पति कैली हुकर।

कैली दंपति ने सिसिली की अदालत में सिरागुसा के खिलाफ एक मुकदमा दायर किया। उन्होंने आरोप लगाया है कि सिरागुसा ने कैली और लेसली के मस्तिष्क में यह वात विठा दी थी कि शीघ्र ही प्रलय होने वाली है, जिसमें समूचा संसार नष्ट हो जायेगा, मगर वे लोग वच सकते हैं, जो इस मसीहा की सीख के अनुसार आत्मशुद्धि द्वारा मृत देह में पुनर्जीवित होने की विद्या प्राप्त कर लेंगे।

अपने आवेदन में कैली ने कहा कि सिरागुसा ने उसे आदेश दिया कि तुम अकेले ही उत्तर-पूर्व इटली के चेसेना जनपद में जाकर वहां जेरिको के आप्त-पुरुष की तलाश करो। कैली ने तनिक आनाकानी न की और वह गुरु के आदेश को ब्रह्मवाक्य मानकर अपनी पत्नी लेसली को गुरु के चरणों में ही छोड़कर अकेला चेसेना चला गया। वास्तव में सिरागुसा ने कैली को झांसा दिया था, इस वहाने वह

तेजाबी शैतानवाद: मेंसन गुरु-संस्कृति

"मैं पिताजी के विचारों से तनिक सहमत न थी और अपनी बात पर डटी हुई थी। बहस गर्म होती जा रही थी। पिताजी गुस्से से तमतमा उठे, उन्होंने मुझे ठोकर लगायी और अपने घर से बाहर धकेल दिया। वे चीखकर बोले कि अब इस घर में पांव मत रखना।"

"मेरे सामने प्रश्न यह था कि मैं कहां जाऊं? मेरे लिए इस भरी-पूरी दुनिया में न कोई ठौर रह गया था न ठिकाना। सामने से गुजरती हुई कार से लिफ्ट मांगी और समुद्र के किनारे पहुंचकर एक बैंच पर बैठ गयी। मेरा ध्यान समुद्र की उठती-गिरती लहरों पर था और मैं अपनी त्रासदी को उस समय एकदम भूल गयी थी।"

"इतने में ही एक गंदा-सा आदमी अचानक कहीं से आया और मेरे पीछे की दीवार पर बैठ गया। उसने एक छोटी-सी टोपी ओढ़ रखी थी। मैंने उसकी ओर देखा.... वह मुस्कराया और उसने मुझसे पूछा, समस्या क्या है?"

"मुझे कुछ याद नहीं कि उस समय वह बूढ़ा लग रहा था या जवान। हां, मुझे इतना याद है कि उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी, लेकिन वह देखने में अच्छा लग रहा था। फिर भी उसके प्रश्न पर मैं सहसा सहम गयी थी और मैंने उससे पूछा था कि तुम्हें कैसे मालूम कि मेरे सामने कोई समस्या आ गयी है?"

सब ठीक हो जायेगा

"इस पर वह जोरों से मुस्कराया और मुझे ऐसा लगा कि इस आदमी ने मेरे भीतर झांककर मेरे मन की सारी बात एकदम जान ली है। वह बोला कि सानफ्रांसिस्को की हेट एशबरी में लोग मुझे माली कहते हैं। मैं वहां फ्लावर चिल्ड्रेन की देखभाल करता हूं।"

"उसकी यह बात सुनकर मेरे मन में न जाने क्यों यह ख्याल आया कि माली बीज बोता है। मैं स्वयं इस कल्पना का कोई अर्थ नहीं समझ पा रही थी, लेकिन मैं न जाने क्यों पहले से भी ज्यादा डर गयी और मैंने अपने दोनों घुटने आपस में सटा लिये।"

"मुझे इस तरह डरी हुई देखकर वह बोला कि सब ठीक हो जायेगा। और ....उसी आवाज ने अनजाने में ही मेरे भीतर यह विश्वास जगा दिया कि सचमुच

शैतानवाद का मसीहा चार्ल्स मेंसन, जो अपने भीतर जलती नफरत की भट्टी में सारी दुनिया को जलाकर राख कर देना चाहता है।

सब ठीक हो जायेगा। उस आदमी में गजब की फुर्ती थी और वह बेहद कोमल मालूम पड़ता था। उसकी मुस्कान में एक स्नेहिल पिता और शैतान—दोनों की झलक थी। मैं यह तय नहीं कर पायी कि वह दोनों में से कौन है? एक ओर मैं डरी हुई थी, दूसरी ओर सम्मोहित। मैंने अपना सिर घुटनों पर रख लिया और मन ही मन यह चाहने लगी कि यह शख्स यहां से चला जाये। मैंने सिर उठाया तो वह सचमुच जा चुका था।"

"लेकिन मैं खुद को ही नहीं समझ पा रही थी, मेरे मन में उससे बातें करने की लालसा तीव्र हो उठी और ....जैसे ही मैंने पीठ मोड़कर उसे खोजना शुरू किया, वह तुरंत दीवार पर आ बैठा और मेरी ओर देखकर मुस्कराने लगा। मुझे यह सब परी-कथा जैसा लग रहा था। यथार्थ तो बिलकुल नहीं।"

"उसने बहुत सधे हुए स्वर में कहा कि अच्छा.... तो बात यह है कि तुम्हारे पिता ने तुम्हें घर से निकाल दिया है। मुझे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ और मैं इस विचार में खो गयी कि आखिर इस अजनबी को यह बात मालूम कैसे हुई कि मुझ पर क्या बीती है, लेकिन अचानक मेरे मन का डर निकल गया। मैं हंस पड़ी और बेहद हलकी हो गयी।"

दरवाजा मत टटोलो

"उसके बाद हम दोनों बहुत देर तक बातें करते रहे। मुझे उसका संग बहुत अच्छा लगा, उसके साथ आजादी महसूस हुई। जीवन में पहली बार मेरे सामने संपूर्ण स्वतंत्रता का द्वार खुल गया था।"

"उसने मुझसे एक बहुत बढ़िया बात कही। वह बोला कि बाहर की दुनिया में जाने के लिए कोई रास्ता दरवाजे में से होकर नहीं जाता। और ....फिर वह हंस

पड़ा। कुछ देर रुकने के बाद वह फिर बोला कि दरवाजा मत टटोलो, तब तुम्हारी आजादी को किसी तरह का खतरा नहीं रह जायेगा।''

''इसके बाद उसने मुझे अपनी जिंदगी के बीते हुए बीस बरसों की सारी बातें एक-एक करके बतायीं। उसने मुझे अपने जेल-जीवन और जीवन-संघर्ष के बारे में सब कुछ साफ-साफ बताया, छिपाया कुछ भी नहीं। उसने मुझे यह भी बताया कि लोग उसे शैतान कहते हैं और वह व्यवस्था का दुश्मन है।''

''लंबी-चौड़ी बातचीत के बाद हमारे सामने फिर वही प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि मेरी मूल समस्या यह है कि मैं कहां जाऊं? मैं इसका कोई हल नहीं जानती थी, लेकिन न जाने कैसे मुझे ऐसा विश्वास हो गया कि मेरी समस्या का हल उसे निश्चित रूप से मालूम है। उसने मुझसे कहा कि वह उत्तर दिशा में जंगलों की ओर जा रहा है और उसने मुझे अपने साथ चलने के लिए आमंत्रित भी किया।''

''मैंने फौरन इनकार कर दिया। मैंने उससे कहा कि मुझे कुछ जिम्मेदारियां पूरी करनी हैं और मेरे कॉलेज के पहले सेमेस्टर के खत्म होने में सिर्फ तीन सप्ताह बचे हैं। इतना कहकर मैंने खड़े होने की चेष्टा की और उसकी ओर देखा। मेरे चेहरे पर चिंता उभर आयी थी क्योंकि मैं भीतर से बेहद चिंतित थी। उसने पटरी पर चलना शुरू कर दिया। उसने मुझसे कहा कि ठीक है, जो निश्चय तुम्हें करने हैं, उनके बारे में मैं क्या कर सकता हूं। उसने मेरी ओर देखा और एक संवेदना-भरी मुस्कान उसके चेहरे पर खेलने लगी।''

''वह तेजी से लपका और बिना पीछे मुड़े तेजी के साथ सड़क पर चलने लगा। मैं ठगी-सी पलभर तो यों ही खड़ी रही, मगर फिर न जाने मुझे क्या सूझा कि मैं उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगी। उसके बाद भी मैंने कभी यह नहीं सोचा कि मैंने ऐसा क्यों किया और न उसे छोड़ने की ही बात मेरे मन में आयी।''

''मैं लपककर उसके समीप पहुंच गयी। मुझे बहुत अच्छा लगा। मैंने अपना सिर उसके कंधे पर टिका दिया। मुझे उस समय एक ऐसे पिता-पुरुष की

अमरीका के राष्ट्रपति फोर्ड पर मैंसन गिरोह की लिनेट फ्राम नामक एक युवती द्वारा किया गया हमला तत्कालीन सभी पत्र-पत्रिकाओं में सुर्खियों में छपा था।

आवश्यकता थी, जो मुझे पूरी तरह संभाल लेता। उसने यही किया और मैं उसके कंधे से लगकर निश्चिंत हो गयी।"

इस लड़की का नाम 6 सितंबर, 1975 को संसार के प्रत्येक समाचार-पत्र में मुखपृष्ठ पर मोटे अक्षरों में छपा—लिनेट फ्रॉम। उसने अमरीका के राष्ट्रपति जेराल्ड फोर्ड के माथे पर सिर्फ दो फुट की दूरी पर पिस्तौल तानकर उनकी हत्या करने का प्रयास किया था। संसार के किसी भी राष्ट्र के अध्यक्ष की हत्या के प्रयास में पकड़ी जाने वाली वह पहली महिला थी। और लिनेट फ्रॉम जिस गंदे से मगर कोमल हृदय पुरुष के कंधे से लगकर निश्चिंत हो गयी थी, उसका नाम है—चार्ल्स मेंसन।

हत्यारों का ईश्वर यह मेंसन कौन है?

चार्ल्स मेंसन अमरीका का एक प्रख्यात हत्यारा ही नहीं बल्कि हत्यारों, चोरों और अपराधियों के एक पूरे गिरोह का गुरु, मसीहा, पिता, मित्र, पति और परमेश्वर है। उसका जन्म 16 बरस की एक कुआंरी किशोरी की कोख से हुआ था। वह अपनी मां को कुआंरी मरियम कहता है। मेंसन जब छोटा था, तभी उसकी मां भले-मानुसों को ठगने, वेश्यावृत्ति, चोरी और जेब काटने के अपराधों में कई बार पकड़ी गयी और उसे जेल भी काटनी पड़ी। यौन-मुक्ताचार का संस्कार (विकार) मेंसन को मां के दूध में मिला। मेंसन ने स्वयं 13 बरस की उम्र में चोरी शुरू कर दी थी। वह अक्सर कार चुराता और पकड़ा जाता। उसे सुधारगृहों में रखा जाता, मां उसे पैरोल पर छुड़ा लाती और वह चोरी करके फिर से पकड़ा जाता। जेल में उसने गाना और गिटार बजाना सीख लिया तथा परामानसिक शक्तियों के बारे में अध्ययन किया। इसी समय उसने साइंटोलोजी का भी अध्ययन किया। उसके हाथ न जाने कहां से एक किताब लग गयी, जिसमें फारस और सीरिया के ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी के शेखों के हरम और संगठित अपराधों का विस्तृत वर्णन था। शायद इसी पुस्तक के आधार पर उसने शेख-अल-जबल 'पर्वत का शेख' बनने का फैसला कर लिया। वह अपने-आपको 'पर्वत का शेख' कहता रहा।

मेंसन के शिष्यों में पुरुष कम और युवतियां अधिक हैं। वे सब उसे गुरु मानते हैं। मेंसन अपने आप में एक अजूबा है। वह अपने-आपको शैतान का बेटा और मसीहा दोनों कहता है। इतना ही नहीं, वह स्वयं को ईश्वर का बेटा और ईश्वर का मसीहा भी मानता है।

अलगाव

मेंसन उस अलगाव की उपज है, जिससे आज समूचा पाश्चात्य समाज पीड़ित है। अपनी मां की मृत्यु के बाद मेंसन ने समाज से टूटे हुए ऐसे युवक-युवतियों को इकट्ठा करना शुरू कर दिया, जिन्हें या तो उनके माता-पिता ने घर से निकाल दिया था या जो स्वयं ही अपना खंडित परिवार छोड़कर नि—

आये थे। उनमें लड़कियों की संख्या अधिक थी। धीरे-धीरे इन लड़कियों ने एक विशाल मेंसन-परिवार बना लिया, जिसे मेंसन का हरम भी कहा जा सकता है। मेंसन इस परिवार का मुखिया, पति, मसीहा, पिता और परमेश्वर बन गया।

मेंसन और उसका परिवार दावा करते हैं कि उन्हें समाज और जगत से कुछ भी लेना-देना नहीं है, उन्होंने संपूर्ण अलगाव को अपना धर्म मान लिया है। वे शैतान को ही ईश्वर मानते हैं, उनका शैतान जघन्य अपराधों, हत्याओं और लूटपाट का देवता है। मेंसन परिवार अपराध करने में आनंद महसूस करता है। जब लिनेट फ्रॉम अमरीका के राष्ट्रपति फोर्ड की हत्या के प्रयास में पकड़ी गयी थी, तब उसने अदालत को बताया था कि अमरीकी समाज 'आत्मा की अंधेरी रात' से होकर गुजर रहा है, वह अपनी संतान के मन में अपने प्रति अलगाव पैदा कर रहा है। अमरीकी समाज विघटन की खतरनाक प्रक्रिया से गुजर रहा है। उसके पास न तो कोई सिद्धांत है और न आदर्श ही। सिद्धांतों और आदर्शों के अभाव में नियमों, नीतियों और कानूनों ने अपनी प्रासंगिकता खो दी है तथा विधि-निषेध समाप्त हो गये हैं।

मेंसन अपने शिष्यों से कहता है कि अमरीकी समाज नैतिकता और मूल्यों को पूरी तरह खो चुका है। अतः उनकी चिंता करने की आवश्यकता नहीं है तथा मन पर यह बोझा रखना भी व्यर्थ है कि हम अच्छे काम नहीं कर रहे हैं अथवा ऐसे काम कर रहे हैं, जिनकी अनुमति कानून नहीं देता। वह कहता है कि कानून की अब प्रासंगिकता ही नहीं रही है। मेंसन-परिवार की लड़कियों ने अदालत के सामने कहा कि "मेंसन के संरक्षण में किसी नियम का पालन नहीं करना पड़ा, जब चाहे

लिनेट फ्रॉम अमरीका के राष्ट्रपति फोर्ड की हत्या के लिए बंदूक उठाये (बायें) पुलिस द्वारा पकड़े जाने पर फ्रॉम (दायें)

तब सो जाओ, गाने लगे, धूप सेंकते रहो अथवा संभोग का आनंद ले लो। हम तितलियों की तरह हैं। उनकी तरह हमें भी न सूत कातना पड़ता है, न खेत में काम करना पड़ता है।''

मेंसन द्वारा प्रतिपादित तीखे अथवा तेजाबी शैतानवाद के दो मूल लक्षण हैं—स्वतंत्रता और अलगाव। मेंसन और उसके अनुयायियों ने माथे पर रोमन लिपि का 'एक्स' अंक्षर खोद रखा है। एक्स अथवा गुण का चिह्न अलगाव अथवा पूर्ण अलगाव का प्रतीक है। मेंसन समाज, उसके कानून, नैतिक मर्यादाओं, श्रम संबंधी नैतिकता, संस्कृति, सभ्यता, कला, इतिहास और सामाजिक धारणाओं के प्रति पूरी तरह निरादर की शिक्षा देता है।

मेंसन के हरम की लड़कियां लाल रंग के लंबे चोगे पहनती हैं और छुरे जैसा एक लंबा चाकू म्यान के भीतर रखती हैं। वे कब्रिस्तान में जातीं तथा यह दावा करती हैं कि मृतकों की आत्माएं उनसे बात करती हैं। ये लड़कियां खंडित परिवारों से आयी हैं अथवा किशोरी माताओं की अवैध संतान हैं, जिनका लालन-पालन अभाव और गरीबी में हुआ है। इन्हें उत्तराधिकार में केवल अवैधानिकता मिली है। वे वास्तव में समाज से बहिष्कृत हैं। उन्हें समाज में कभी स्वीकार ही नहीं किया गया और मेंसन ने उन्हें सिखाया कि समस्त प्रतिबंधों, नियमों तथा उस समाज की रीति-नीति की तनिक परवाह न करो, जिसने अपनी अभागी संतान को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। मेंसन कवि है और गायक भी। उसके गानों के रिकार्ड बहुत लोकप्रिय हुए और गर्म जलेबियों की तरह लाखों की तादाद में बिके। उसके गीत घोर पदार्थवाद का संदेश देते हैं तथा उनमें आध्यात्मिकता अथवा सामाजिक और मानवीय मूल्यों का तनिक भी समावेश नहीं होता।

मेंसन के अनुयायी अपने चारों ओर घटित होने वाली घटनाओं में तनिक रुचि नहीं लेते। वे अखबार तक नहीं पढ़ते, न मतदान ही करते। जब किसी ने उनसे कहा कि मनुष्य ने चांद पर विजय प्राप्त कर ली है तो उन्हें कोई आश्चर्य नहीं हुआ और उन्होंने कहा कि यह सब तो हमारे स्वामी की इच्छा से होता ही रहता है। वे सर्व-शक्तिमान हैं, वे पर्वतों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचा सकते हैं।

मेंसन के अनुयायी उसे दैवी मानते हैं, उनके लिए इस जगत में केवल मेंसन-परिवार ही पवित्र है। उसके अतिरिक्त अन्य सभी कुछ अपवित्र और निरर्थक है। इस परिवार के प्रत्येक सदस्य का मसीहा (अर्थात् मेंसन) के साथ पूर्ण संबंध होता है। जिस बात को मेंसन स्वीकार कर लेता है, वह सही होती है तथा जिसे वह अस्वीकार कर देता है, वह गलत मानी जाती है। वह उन्हें चोरी और हत्या करने को कहता है, साथ ही उनके दिमाग को यह कहकर धो डालता है कि ''चोरी करते समय तुम्हें चोर नहीं माना जा सकता क्योंकि तुम [illegible] आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लेते हो और यह तो प्रत्येक मनुष्य का जन्म-[illegible] अधिकार है।'' उन्होंने कारों को अपने लिए अनिवार्य मान लिया और [illegible] बिना कारें नहीं चल सकतीं, अतः वे कार और गैसोलीन, दोनों की चोरी [illegible]

कब्रिस्तान में मृतात्माओं से संपर्क साधती हुई मेंसन के हरम की लड़कियां।

मेंसन ने अपने हरम की लड़कियों को सिखलाया, "जो कुछ हमारा नहीं है, उसे नष्ट कर दो।" वह उनसे इसी सीख के आधार पर हत्याएं कराता रहा।

अमरीका में मेंसन का पॉप-संगीत बहुत लोकप्रिय रहा है। होटलों और घरों पर मदिरा-पान की दावतों में उसे गाने के लिए बुलाया जाता था। ऐसी ही एक पार्टी में मेंसन का परिचय हॉलीवुड की प्रख्यात सुंदरी-अभिनेत्री शेरोन टेट के साथ कराया गया, जिसका उन दिनों रोमन पोलांस्की के साथ प्रेम चल रहा था और वह उससे गर्भवती हो चुकी थी। मेंसन चाहता था कि शेरोन उसके साथ रहे किंतु शेरोन ने साफ इनकार कर दिया, अतः मेंसन ने अपनी लड़कियों से कहा कि शेरोन को समाप्त कर दो, "जो हमारा नहीं है, उसे इस जगत में जीने का अधिकार नहीं है।"

मेंसन ने शेरोन की हत्या का काम अपने 24 वर्षीय शिष्य चार्ल्स वाटसन, 21 वर्षीया सूसन एटकिंस, 22 वर्षीया पैट्रीशिया क्रेनविन्केल और 20 वर्षीया लिंडा कसाबियन को सौंपा। सूसन और कसाबियन उस समय मेंसन से गर्भवती थीं। वाटसन के पास बंदूक थी और लड़कियों के पास खुखरियां और बर्छियां। उन्होंने अगस्त, 1969 में शेरोन टेट और पांच अन्य लोगों की हत्या कर दी।

संभोग और मादक द्रव्य

मेंसन और उसके हरम की लड़कियां यौन संबंधों को विशेष महत्त्व नहीं देतीं। वह उनके लिए दिनचर्या का सामान्य अंग बन गया है। मेंसन-परिवार की 90 प्रतिशत लड़कियों ने यह स्वीकार किया है कि उन्होंने अपने जीवन में मेंसन के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष के बारे में सोचा तक नहीं है। मेंसन का ध्यान और प्रेम अपनी ओर आकर्षित करने के लिए उन्हें आपस में होड़ करने की आवश्यकता

नहीं पड़ती। वह उन सब के प्रति इतना स्नेहिल है कि वे सब एक परिवार की भांति रहती हैं।

सन् 1967 में मेंसन अपने अनुयायियों को लेकर हेट-एशबरी के हिप्पी-स्वर्ग में जा पहुंचा और वहां हिप्पी संगीत का सम्राट बन गया। सन् 1968 के बसंत में वह लॉस एंजिल्स चला गया। उसने अपने बच्चों को जन्म दिया, जिनका लालन-पालन सामुदायिक-संतान के रूप में हुआ।

मेंसन-परिवार की लड़कियां जब शेरोन टेट की हत्या के जुर्म में कारावास का दंड भोग रही थीं, तब एक दिन अचानक उन्होंने जेल अधिकारियों से कहा कि उनके मसीहा मेंसन ने अपनी दूर-संवेदन-शक्ति के द्वारा उन्हें यह आदेश दिया है कि वे मूंगफली का जमाया हुआ तेल और शहद खाकर आत्मशुद्धि करें। अतः उन्हें ये दोनों वस्तुएं दी जायें।

मेंसन बाहर के लोगों को अपने हरम की लड़कियों के इस्तेमाल की अनुमति नहीं देता किंतु जब वह किसी व्यक्ति को उपकृत करना चाहता, तब उसे अपने साथ ठहरने और अपने हरम की लड़कियों के साथ यौन-संबंध स्थापित करने की अनुमति देता रहा है। बहुत बार वह उन लड़कियों को उधार पर घर से बाहर भी भेजता रहा। मेंसन ने लड़कियों को मादक द्रव्यों का चस्का लगा दिया, वे चोरी-छिपे मादक द्रव्य बेचती हैं और दूसरों के व्यवहार पर नियंत्रण करने के लिए मादक द्रव्यों का उपयोग करती हैं।

एक बार मेंसन पर स्त्रियों और मादक द्रव्यों का अवैध धंधा करने के लिए मुकदमा चलाया गया, पुलिस ने होनोलूलू अदालत के सामने बारबरा हाइट नामक स्त्री को मेंसन के विरुद्ध गवाही देने के लिए पेश किया। लिनेट फ्रॉम ने बारबरा के साथ दोस्ती गांठ ली और उसे यह विश्वास दिला दिया कि मेंसन शैतान का अवतार है। गवाही के दिन फ्रॉम ने बारबरा को एल.एस.डी. में लिपटा हुआ एक हैम्बरगर खिला दिया, जिसका नतीजा यह हुआ कि बारबरा ने मेंसन के विरुद्ध पुलिस द्वारा लगाये गये आरोपों की पुष्टि करने के बजाय उनका खंडन किया।

कुछ समय बाद ही मेंसन को शेरोन टेट की हत्या की योजना बनाने तथा गैरी हिनमेन और डोनाल्ड शिया की हत्याओं के लिए दोषी पाया गया और उसे सजा दी गयी। मेंसन और लिनेट पर ग्रानाडा-हिल्स में डाका डालने तथा कैलीफोर्निया के स्टाकटन नगर में 19 वर्षीया लारीन विलेट और उसके पति जेम्स विलेट की हत्याओं के आरोप भी लगाये गये। मेंसन और उसके गिरोह की लड़कियां अदालत के सामने अपना-अपना बचाव नहीं करते। वे कहते हैं कि यह समाज उनके लिए पराया है, अतः उसके हाथों उनका सताया जाना ही उनकी नियति है। उन्हें विश्वास है कि वे जो भी अपराध कर रहे हैं, उसकी जिम्मेदारी उन पर नहीं [illegible] उस समाज पर है, जिसने उन्हें अपराध की दिशा में धकेला है।

लेना ला-बियांका की हत्या के आरोप में मेंसन को आजीवन [illegible] दंड दिया गया परंतु मेंसन और उसके गिरोह की लड़कियों को [illegible]

कि उसे बहुत समय तक जेल में रखा जा सकेगा। उनके मन में यह आस्था कूट-कूटकर भरी है कि उनका मसीहा मेंसन एक न एक दिन इस जगत का रूपांतरण कर डालेगा और पृथ्वी पर अपना साम्राज्य स्थापित कर लेगा। मेंसन के हरम की लड़कियों का दावा है कि उन्होंने अपने गुरु की कृपा से आत्म-दर्शन अथवा आध्यात्मिक-समाधान प्राप्त कर लिया है। ये महिलाएं अपराध, वर्जनाहीन यौन-संभोग और प्रेत-विद्या की साधना में लगी रहती हैं, फिर भी वे स्वयं को साध्वियां कहती हैं और यह दावा करती हैं कि उन्हें अपने मसीहा मेंसन की ओर से प्रेम तथा उसका संदेश फैलाने का पवित्र कार्य सौंपा गया है।

उनका यह मसीहा मनोविस्तारक द्रव्यों—चरस, गांजा और एल.एस.डी. के स्वर्ग का परमेश्वर है। वह समाज और उसके नीति-नियमों को पूर्णतया अस्वीकार करता है तथा हिंसा, जोर-जबरदस्ती दूसरों के मन पर नियंत्रण और मृत्यु, मृतकों और घातक तत्त्वों के साथ सांठगांठ जैसे उग्र तथा तेजाबी साधनों द्वारा अपने परमेश्वर अर्थात् शैतान का साम्राज्य स्थापित करने के लिए समाज की समस्त प्रथाओं, परंपराओं, नियमों और कानून के उल्लंघन अथवा उनसे मुक्ति के दर्शन का प्रतिपादन करता है। मेंसन वस्तुतः सामाजिक अराजकता और विनाशकारी शैतानवाद की संस्कृति (कल्ट) का मसीहा है। ■■

* मेंसन के हत्यारे-रूप के विषय में अधिक जानकारी के लिए हमारे प्रकाशन संस्थान से इसी **विश्व-प्रसिद्ध शृंखला** में प्रकाशित पुस्तक 'विश्व-प्रसिद्ध क्रूर हत्यारे' अवश्य पढ़ें।

मसीहा मून

"परमेश्वर अब ईसाई धर्म को तिलांजलि दे रहा है और वह एक नये धर्म की स्थापना कर रहा है। वह नया धर्म यूनीफिकेशन चर्च है। विश्व के समस्त ईसाइयों को हमारा आंदोलन अपने भीतर समाहित कर लेगा। मानव जाति के इतिहास में अतीतकाल में अनेक संत, मसीहा और धार्मिक नेता हुए हैं.... आपके सामने यहां जो गुरु बैठा है, वह उन सब लोगों से कहीं अधिक है और स्वयं ईसा मसीह से भी बड़ा है।"

ईसा मसीह से बड़ा होने का दावा करने वाला यह गुरु सुन म्यूंग मून है। मून का जन्म उत्तर कोरिया के चोंग जून-गन नामक नगर में सन् 1920 में एक प्रेसबिटेरियन परिवार में हुआ था। उसका बचपन का नाम योंग-म्यूंग मून था। बाद में उसने अपने नाम में से योंग हटाकर सुन जोड़ लिया। योंग का अर्थ है—अजगर। मून को अपने नाम में अजगर शब्द अच्छा नहीं लगा। अतः उसने सुन शब्द जोड़ा, जिसका अर्थ होता है—शांत। संभवतः कोरियाई भाषा का सुन शब्द संस्कृत भाषा के शून्य शब्द से बना है।

मून का दावा है कि सन् 1936 में ईस्टर के रविवार को कोरिया के एक पर्वतीय क्षेत्र में ईसा मसीह के साथ उसकी मुलाकात हुई थी। मून कहता है कि उसी अवसर पर उसे दैवी रहस्य का ज्ञान पहली बार ईसा से प्राप्त हुआ। ईसा ने उसे यह भी बताया कि उसे इस पृथ्वी पर किस विशेष कार्य के लिए भेजा गया है। वह कहता है कि ईसा ने उससे कहा, "मनुष्य की मुक्ति के लिए मैंने जो कार्य शुरू किया था, तुम उसे पूरा करो।"

मून का विवाह सन् 1944 में हुआ, परंतु वह अपनी गर्भवती पत्नी को सियोल में ही छोड़कर उपदेश करने के लिए उत्तर कोरिया चला गया। उत्तर कोरिया सरकार ने सन् 1948 में मून को गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया। मून के साथ जेल में उस समय उत्तर कोरिया का एक भूतपूर्व सैनिक अधिकारी भी था। वह कहता है कि मून को 'सामाजिक अव्यवस्था' उत्पन्न करने के अपराध में 7 वर्ष के कारावास का दंड दिया गया था। यह सामाजिक अव्यवस्था और कुछ नहीं मून द्वारा किये जाने वाला 'यौन-कर्मकांड' था। मून के अनुयायी इस आरोप का खंडन करते हैं और कहते हैं कि मून को उसकी धार्मिक और साम्यवाद विरोधी गतिविधि के कारण जेल में डाला गया था। सन् 1950 में जिस समय चीन ने संयुक्त राष्ट्र

यूनीफिकेशन चर्च का संस्थापक सुन योंग-म्यून मून, जिसका कहना है कि धरती पर उसका अवतार ईसामसीह द्वारा मानव-मुक्ति के अधूरे छूटे कार्य को पूर्ण करने के लिए हुआ है।

सेना को उत्तर कोरिया से खदेड़ा, उसी समय मून भी वहां से भाग निकला और सन् 1957 में उसने यूनीफिकेशन चर्च की नींव रखी।

मून की पहली पत्नी ने उसे तलाक दे दिया, तब मून ने 35 वर्षीया कोरियाई महिला हाक जा हान के साथ सन् 1960 में विवाह कर लिया, जिसने उसे 8 संतानें प्रदान कीं। मून के अनुयायी हाक को 'माता' तथा स्वयं मून को 'पिता' कहते हैं। मून और उसका परिवार न्यूयार्क नगर के उत्तर में वैस्ट चैस्टर काउंटी की धनी बस्ती के उस विशाल बगले में रहता है, जो सन् 1972 में मून के अमरीका आने पर यूनीफिकेशन चर्च ने उसके लिए कई लाख डॉलर में खरीदा था।

मून बहुत शान-शौकत की जिंदगी जीता है तथा उसके परिवार के सैर-सपाटे के लिए यूनीफिकेशन चर्च ने उसे दो विलास-पोत प्रदान किये हैं। उसका रहन-सहन सामंती ढंग का है। उसने कैलीफोर्निया और न्यूयार्क शहर के क्षेत्रों में लगभग 2 करोड़ डॉलर की जायदाद खरीदी तथा 50 लाख डॉलर में होटल न्यूयार्कर खरीदा।

व्यापार-व्यवहार

अमरीका जाने से पहले मून ने दक्षिण कोरिया में अपने वित्तीय साम्राज्य की सुदृढ़ नींव डाल दी थी। जिस समय उसने यूनीफिकेशन चर्च की स्थापना की, उस समय उसके पास अधिक धन नहीं था, फिर भी उसने व्यापार-व्यवसाय का अच्छा-खासा जाल बुन डाला। व्यापार के साथ-साथ वह उत्पादन भी करता है।

उसके कारखानों में मशीनरी, हवाई राइफलें, पत्थर की दस्तकारी की चीजें और गिनसेंग-चाय का उत्पादन होता है। वह चीन से शहद मंगाकर संसारभर में बेचता है। अकेले सन् 1975 में गिनसेंग-चाय के निर्यात से उसे 1 करोड़ डॉलर का लाभ प्राप्त हुआ था। उसके कारखानों में राष्ट्रीय प्रतिरक्षा ठेकों के अंतर्गत शस्त्रों के पुर्जे भी बनाये जाते हैं, इनमें से प्रत्येक कंपनी के निदेशक-मंडल का अध्यक्ष मून स्वयं है और वह उनके कार्यकलाप तथा उनकी संपदा पर नियंत्रण रखता है।

मून ने संयुक्त राज्य अमरीका के प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण एवं सत्ताधारी व्यक्तियों से गहरा संपर्क स्थापित कर लिया था। राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन के साथ उसके संबंध बहुत घनिष्ठ थे। वाटरगेट संकट और महाभियोग-सुनवायी के दौरान उसने रिचर्ड निक्सन के कल्याण के लिए प्रार्थनाओं का आयोजन कराया और रतजगे कराये। वाशिंगटन के राजधानी क्षेत्र में उसने अपने चर्च की एक नियमित शाखा खोल दी है, जिसमें अधिकांशतः आकर्षक युवतियां कार्य करती हैं, जो संयुक्त राज्य कांग्रेस के सदस्यों से चर्चा करने के लिए उनके कार्यालयों में नियमित रूप से आती-जाती रहती हैं। इसी प्रकार जर्मनी, जापान और संसार के अन्य अनेक देशों में जो भी सरकार होती है, मून उसके साथ ही अपना तालमेल स्थापित कर लेता है।

मून-उप-संस्कृति

मून ने अपने आंदोलन के लिए एक नये धर्म ग्रंथ 'डिवाइन प्रिंसिपल' (दैवी-सिद्धांत) की रचना की है, जिसे नयी बाइबिल कहा जाता है। मून के अनुयायी ऐसा मानते हैं कि मून दूसरा मसीहा है और उसकी कीर्ति ईसा की अपेक्षा अधिक होगी।

मून ने अपने चारों ओर लाखों युवा अनुयायी बटोर लिए हैं। उसके धार्मिक साम्राज्य के अंतर्गत 125 देशों में 20 लाख से अधिक अनुयायी हैं और उसके वित्तीय साम्राज्य की हैसियत 2 अरब डॉलर आंकी जाती है। मून का धर्म-दर्शन ईसाई जगत के सम्मुख एक ऐसा नया आदर्श पेश करता है, जिसमें पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों का संगम हुआ है। 'डिवाइन प्रिंसिपल' के अनुसार शैतान ने हव्वा को अपनी वासना के जाल में फंसा लिया था। आदम और उसकी संतान अर्थात् मनुष्य जाति में यह यौन अशुचिता शैतान से ही आयी है। क्राइस्ट का जन्म एक आदर्श महिला के संग विवाह करके उसे पूर्णता प्रदान करने के लिए हुआ था, जिसका प्रयोजन पतित मनुष्य जाति को उसके मूल-पाप से मुक्ति दिलाना था, परंतु ईसा मसीह को क्रॉस पर लटका दिया गया। इस कारण वे आदर्श परिवार के निर्माण के अपने दायित्व में विफल हो गये। मून कहता है कि इसी कारण यहूदी अपने 'सामूहिक पाप' का दुष्फल अभी तक भोग रहे हैं और संसार में शैतान की शक्तियां खुली घूम रही हैं। ईसा के विफल हो जाने का अर्थ है कि पूर्ण परिवार के निर्माण के दायित्व की पूर्ति के लिए एक नये मसीहा का उदय होना।

मून कहता है कि ईश्वर ने उसे इसी कार्य की पूर्ति के लिए चुना है। वह अपने अनुयायियों से कहता है कि ईश्वर ने कोरिया को इजरायल की भांति तैयार किया है। वहां ईश्वर और शैतान की शक्तियां आमने-सामने डटी हुई हैं। कोरिया की भूमि 'तीसरे आदम' के जन्म के लिए चुनी गयी है। यह तीसरा आदम ही मसीहा कहलायेगा तथा विवाह तथा एक पूर्ण आदर्श परिवार का निर्माण करके ईसा का अधूरा कार्य पूरा करेगा। वह पृथ्वी पर ईश्वर का साम्राज्य स्थापित करेगा। वह दावे के साथ कहता है कि ईश्वर की ओर से उसे जो नया संदेश प्राप्त हुआ है, उससे ईश्वर की इच्छा पूर्णत: स्पष्ट हो गयी है। ईश्वर की इच्छा है कि इस जगत को नष्ट होने से बचा लिया जाये। मून की दृष्टि में उसका यूनीफिकेशन चर्च जगत की रक्षा का आंदोलन है और उसका प्रयोजन ईश्वर-केन्द्रित व्यक्ति, ईश्वर-केन्द्रित परिवार, ईश्वर-केन्द्रित राष्ट्र और ईश्वर-केन्द्रित विश्व का निर्माण करना है।

मून कहता है, "ईश्वर ने अपनी काल-तालिका के आधार पर मुझे अपना कार्य सौंपा है अथवा यों कहें कि अपने कार्य के लिए मुझे चुना है, परंतु क्यों? यह प्रश्न हमें ईश्वर से ही पूछना चाहिए। मैं केवल एक बात जानता हूं कि मुझे जीवन का यह लक्ष्य ईश्वर की ओर से प्राप्त हुआ है। ईश्वर के तीन बड़े सिरदर्द हैं :—

1. जगत में नैतिक भ्रष्टाचार चारों ओर व्याप्त है,
2. ईसाई चर्च विभाजित हैं और उनका पतन हो रहा है।
3. साम्यवाद का उदय।

ईश्वर की दृष्टि में साम्यवाद एक राक्षसी शक्ति है और यह पृथ्वी पर ईश्वर के साम्राज्य के निर्माण के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है।

"ईसा मसीह यह जानते थे कि यदि वे स्वयं को मसीहा कहेंगे तो उससे उनके प्रयोजन की पूर्ति में बाधा पड़ेगी। अत: उन्होंने स्वयं को मसीहा नहीं कहा। मैं भी यह नहीं कह रहा हूं कि मैं मसीहा हूं। मैं तो मात्र ईश्वर के निर्देशों का पालन वफादारी के साथ कर रहा हूं।"

धुलाई दिमाग की और यौनाचार

मून के सिद्धांत का एक अंग यह भी था कि जो महिलाएं उसकी शिष्य बनें, उन्हें आत्म-शुद्धि के लिए उसके साथ सोना चाहिए। यही है वह यौन-कर्मकांड, जिसके आरोप पर उत्तर कोरिया में मून पर मुकदमा चलाया गया और उसे जेल में रखा गया था।

यह मान लिया गया कि मून एक शुद्ध पुरुष है। अत: उसके साथ यौन-संभोग से शरीर और आत्मा की शुद्धि होती है। इसको 'रक्त-शुद्धि' नाम दिया गया। मून की जवानी के काल में उसके शिष्यों का विवाह तब तक विवाहित नहीं माना जाता था, जब तक कि उनकी वधुएं मसीहा मून के साथ सहवास न कर लें। जैसे-जैसे मून-उप-संस्कृति का घेरा फैलता चला गया, वैसे-वैसे रक्त-शुद्धि की क्रिया ने नया मोड़ ले लिया। अपने शिष्यों के विवाह मून स्वयं तय करता और

उनके सामूहिक विवाह कराता। नव-विवाहितों को यह निर्देश दिया जाता कि वे 40 दिन तक संभोग नहीं करेंगे। ऐसा माना जाता है कि इन 40 रातों में वधुएं चेतना के स्तर पर मून के संग शयन करती हैं।

दिखावे के लिए मून ने यह नियम बनाया कि उसके अनुयायी विवाह से पूर्व यौन-संबंध स्थापित नहीं करेंगे, परंतु वास्तव में मून-उप-संस्कृति में मुक्त यौनाचार एक आम बात है। उसको ढंकने के लिए मून ने अपने अनुयायियों को एक नारा दिया है—'प्रेम की बमबारी'। वह अपने शिष्यों को आपस में एक-दूसरे को सहारा देने वाले भाई-बहन कहता है, परंतु उसके अनुयायी इस पाखंड को खूब पहचानते हैं। मून के शिष्य स्त्री और पुरुष एक-दूसरे की ओर मादक मुस्कान फेंकते हैं, प्यार से पीठ सहलाते हैं और हाथ थामे घूमते रहते हैं। मून ने होटल न्यूयार्कर को अपने अनुयायियों के आवास-गृह में बदल डाला है, जहां वे मुक्त यौनाचार के द्वारा समाधि का सुख प्राप्त करते हैं।

मून-उप-संस्कृति नये रंगरूटों के मस्तिष्क की धुलाई के व्यवस्थित प्रयास पर टिकी है। उसके द्वारा 'सच्चे पिता' के प्रति भक्ति जागृत की जाती है। शिष्य बनने की इच्छा से आने वाले लोगों को जब मून के सामने पेश किया जाता है तो वह उन्हें कड़ी ड्रिल कराता है। वह उनसे कहता है, "मैं विचार हूं, मैं तुम्हारा मस्तिष्क हूं.... जब तुम मेरे साथ साधना में शामिल हो जाओगे तो तुम्हें सब कुछ करने की स्वतंत्रता होगी, परंतु पूरी तरह मेरी आज्ञा के अधीन रहकर, क्योंकि मैं जो कुछ भी कर रहा हूं, वह अव्यवस्थित नहीं है, मैं ईश्वर के आदेश पर कार्य कर रहा हूं।"

"मैं उन सदस्यों को ही अपने शिष्य के रूप में स्वीकार करना चाहता हूं, जो मेरी आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार हों, भले ही उन्हें अपने माता-पिता अथवा अपने राष्ट्र के मुखिया के आदेशों का उल्लंघन करना पड़े और मैं यह दावा करता हूं कि यदि इस संसार की आधी आबादी भी मेरा अनुसरण करने लगे तो मैं समूचे विश्व को उलटकर रख दूंगा। तुम्हें अपना जीवन नये सिरे से—उस जिंदगी से शुरू करना होगा, जिसमें तुम अपने पिछले परिवार, मित्रों, पड़ोसियों और संबंधियों को पूरी तरह अस्वीकार कर दोगे।"

मून इन रंगरूटों से पूछता है, "क्या तुम मेरी आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार हो?" और वे रंगरूट एक स्वर में चीखते हैं, "जी हां। हमारे पिता की जय हो।"

शिष्यों की भर्ती

युवा शिष्यों की भर्ती के लिए मून नये-नये रास्ते अपनाता है। वह समाचार-पत्रों में तरह-तरह के विज्ञापन देता है, जैसे—"ईमानदार और भावनाशील व्यक्तियों की आवश्यकता है, जिनकी दिलचस्पी मानव जाति के उत्थान में हो। इस फोन नंबर पर बात करें.....।" "पर्यावरण, नैतिकता और आध्यात्मिक मोक्ष के विषय में चर्चा के लिए युवाओं का स्वागत है।" इस प्रकार के

यूनीफिकेशन चर्च में नये युवा रंगरूटों की भर्ती के लिए मून समाचार-पत्रों में बड़े लुभावने एवं निर्दोष से लगने वाले विज्ञापन देता है। जाल में फंस जाने के बाद मून इनका मनचाहे तरीके से व्यावसायिक शोषण करता है।

विज्ञापनों द्वारा युवकों और युवतियों को मून की दुनिया में लाया जाता है और जब वे एक बार जाल में फंस जाते हैं तो वहां पहले से मौजूद युवक और युवतियां उन्हें हरदम घेरे रहते हैं। सारा दिन उन्हें भाषण पिलाये जाते हैं और रात पड़ने पर यह बताया जाता है कि इस संसार का अंत समीप है, इससे पहले ईसा मसीह का पुनरागमन होगा। उन्हें यह भी बताया जाता है कि इस जगत को ये नये सत्य सुन म्यूंग मून से प्राप्त हुए हैं। नवांगतुक जब मून के घेरे से बाहर जाना चाहते हैं तो उनसे कहा जाता है कि ईश्वर ने उनको पृथ्वी पर स्वर्ग के साम्राज्य का निर्माण करने के लिए चुन लिया है, अतः यदि वे बाहर के जगह में जायेंगे तो शैतान उन्हें अपनी ओर खींचने की कोशिश करेगा। यह एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक विस्फोट होता है, जिसका परिणाम आमतौर पर यह होता है कि नवांगतुक मून के घेरे में घिरकर उसका बंदी हो जाता है।

नये रंगरूटों को प्रार्थना कक्ष में ले जाया जाता है, उनसे मून के चित्रों के सामने प्रार्थना करने को कहा जाता है और उन्हें मून के प्रवचन सुनाये जाते हैं। मून के चित्र के पास ही उसकी पत्नी का चित्र रखा होता है और नये रंगरूट कमरे में घुसते ही उन चित्रों की ओर देखकर कहते हैं, "हे सच्चे माता-पिता, मैं आपका अभिवादन करता हूं।" इन रंगरूटों को कहा जाता है कि यदि वे संस्था के लिए किसी से एक पैसा भी दान के रूप में प्राप्त कर सकें तो यह ईश्वर की विजय होगी।

मून अपने अंतरंग शिष्यों की प्रतिभा और उनकी शक्ति का शोषण करता है। वे लोग सड़कों पर निकलकर फूल, मोमबत्तियां और मूंगफली और गिनसेंग-चाय बेचते हैं। इस प्रकार मून को प्रतिवर्ष एक करोड़ डॉलर की शुद्ध

आय होती है। मून का यूनीफिकेशन चर्च एक धार्मिक संस्था है। अतः उसे इस कमाई पर आयकर नहीं चुकाना पड़ता। शिष्यों पर बहुत पैसा खर्च किया जाता है, उन्हें रात में 5-6 घंटे से अधिक नहीं सोने दिया जाता तथा निःशुल्क निवास और भोजन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दिया जाता।

मून के ढेर सारे शिष्य तो उसके पहरे पर ही लगे रहते हैं। वह कहता है, "मेरे मिशन में जान का खतरा है। साम्यवादी लोग मेरी जान के पीछे पड़े हैं।" समाज-सेवा में मून को तनिक आस्था नहीं है। वह कहता है कि जीवन में उसकी एक विशिष्ट भूमिका है, उसका काम मनुष्य में ईश्वर की चेतना उत्पन्न करना है। "मैं भौतिक जगत के मूल्य को अस्वीकार नहीं करता, लेकिन शर्त यह है कि उनका उपयोग ईश्वर की सेवा के लिए किया जाये। यदि हम पृथ्वी पर ईश्वरीय साम्राज्य के आदर्श की कल्पना को साकार करना चाहें तो इसके लिए हमें भारी मात्रा में साधनों की आवश्यकता होगी।"

मून से जब यह कहा जाता है कि वह अपने शिष्यों के दिमाग की धुलाई करता है तो वह क्रुद्ध होकर कहता है, "क्या तुम अमरीकी लोग इतने मूर्ख हो कि कोरिया का पादरी मून तुम्हारे दिमाग की धुलाई करने में सफल हो जाता है? और वह भी तब जबकि मैं तुम्हारे साथ चर्चा करने के लिए दुभाषिये का सहारा लेता हूं।"
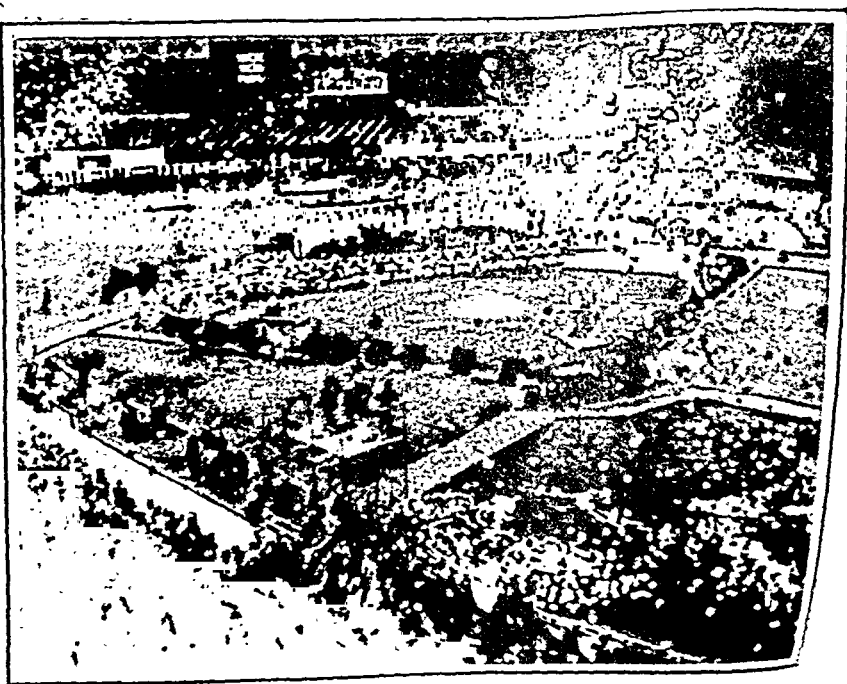
मून द्वारा सन् 1976 में मनाये गये 'बाइसेन्टिनियल गॉड ब्लैस्स अमेरिका फेस्टिवल' की एक झलक

मून के आलोचक

मून की आलोचना करने वालों में अधिकांशतः उसके युवा अनुयायियों के माता-पिता हैं। वे मून पर आरोप लगाते हैं कि उसने उनके परिवारों में दरारें डाल दी हैं और वह बच्चों को माता-पिता की आज्ञा का उल्लंघन करना सिखाता है। ऐसे भी अवसर आये, जब माता-पिता ने अपने ही बच्चों का अपहरण कर लिया और उनमें स्वतंत्र इच्छाशक्ति तथा सोचने की क्षमता उत्पन्न करने की दृष्टि से मानसिक प्रशिक्षण दिलाया।

वे मून पर आरोप लगाते हैं, "वह ईसा-विरोधी है और अधिनायकवादी सिद्धांतों का प्रचार कर रहा है।" मून के कुचक्र से छुड़ाने के लिए जिन बच्चों को मानसिक प्रशिक्षण दिलाया गया, उनमें से एक सिंथिया स्लॉटर 2 महीने तक मून-कल्ट के चक्र में फंसी रही थी। मानसिक प्रशिक्षण द्वारा उस चक्र से मुक्त हो जाने के बाद उसने कहा, "मानसिक प्रशिक्षण के बाद बाहर की दुनिया के साथ तालमेल बिठाना ऐसा कठिन हो गया, मानो मैं किसी दूसरे ग्रह पर पहुंच गयी हूं। मेरे भीतर जो शून्य उत्पन्न हो गया था, उसको भरने में एक लंबा समय लगा। ऐसा लग रहा था मानो नशे की लत से छुटकारा मिला हो। कैसी भयंकर स्थिति थी कि जब मुझसे यह पूछा गया कि क्या मैं मून के कहने पर हत्या कर सकती हूं तो मैंने इसका उत्तर दिया था—हां, यदि वह मुझसे कहेगा तो मैं हत्या अवश्य करूंगी।"

इसके विपरीत पैम फैनशियर जैसे लोग भी हैं। उसके माता-पिता ने भी उसका अपहरण कराया था, परंतु मानसिक प्रशिक्षण उसकी आस्थाओं को नहीं बदल सका। वह कहती है कि उस घटना के बाद से वह अपने माता-पिता के साथ आत्मीयतापूर्ण संबंध बनाये नहीं रख सकी।

भावी योजनाएं

मून ने एक बार अपने अंतरंग शिष्यों से कहा था, "यदि हमारा आंदोलन संचार-साधनों के प्रयोग द्वारा एक राष्ट्र की जनता में जड़ें जमा सका तो वह समूचे विश्व में फैल जायेगा। ....अतः अब हम अपनी पूरी शक्ति एक राष्ट्र पर केन्द्रित करेंगे और वहां से समूचे विश्व तक फैल जायेंगे। मैंने संयुक्त राज्य अमरीका का उसी दृष्टि से चयन किया है।"

"हमें अपनी शक्ति के द्वारा वर्तमान संयुक्त राष्ट्र संघ को नष्ट कर देना चाहिए तथा एक नये संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना करनी चाहिए।"

"यदि अमरीका में वर्तमान भ्रष्टाचार बना रहता है और हम यह देखते हैं कि संसद के सदनों—प्रतिनिधि सदन तथा सीनेट के सदस्यों में हमारे प्रयोजन की दृष्टि से कोई भी उपयोगी नहीं है, तब हम अपने लोगों को उन सदनों के सदस्य बनायेंगे। यह हमारा स्वप्न है, हमारी परियोजना है, लेकिन इस बारे में तुम्हें अपना मुंह बंद रखना होगा।" ■■

जिम जोन्स: एक विफल भगवान

जेम्स वारेन जोन्स को उसके अनुयायी रेवरेंड जिम जोन्स कहकर पुकारते थे। जोन्स कैलीफोर्निया का निवासी था। जोन्स को यह वहम हो गया था कि वह स्वयं भगवान है और उसने कमजोर इच्छाशक्ति वाले हजारों अमरीकी नागरिकों के मन में यह आस्था भर दी कि वह सचमुच भगवान है। जोन्स का आध्यात्मिकता से कुछ भी लेना-देना न था। वह पूरी तरह से भोगी पुरुष था। उसका दर्शन तत्त्वत: तथा व्यवहारत: भोगवादी रहा है और इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि ठेठ भोगवाद और पदार्थवाद में आपादमस्तक डूबे हुए अमरीकियों ने जोन्स को गुरु, मसीहा और भगवान भी मान लिया।

जोन्स विकृत यौन-वासनाओं से ग्रस्त था। उसे ऐश्वर्य और वैभवपूर्ण जीवन के प्रति भारी आसक्ति थी। उसकी इच्छाशक्ति बहुत प्रबल थी और उसने अपने अनुयायियों के मन-बुद्धि और शरीर पर पूर्ण आधिपत्य कर लिया था। उसने उनके मन में यह धारणा कूट-कूटकर भर दी थी कि उनको पूर्णता तथा आध्यात्मिक मोक्ष प्रदान करने की शक्ति उसके हाथों में है, अत: उन्हें अपनी जिंदगी, स्त्रियां, संतान तथा संपत्ति उसके प्रति समर्पित कर देनी चाहिए। वह यह दावा करता था कि जो लोग उसे बेहिचक तथा निश्शंक मन से सांसारिक वस्तुएं भेंट करते हैं, उन्हें वह शांति तथा स्वर्ग का साम्राज्य प्रदान करता है।

जोन्स ने अपनी शिष्याओं के मन में यह विश्वास पैदा कर दिया था कि उसके संग सहवास का अर्थ है भगवान के प्रति समर्पण और उसके साथ संभोग से वे तुरंत चमत्कारपूर्ण परामानसिक आनंद और चेतना के दिव्यलोक में विचरण करने लगेंगी। उसके सुझाव उसके अनुयायी पूरी तरह स्वीकार करने लगे थे क्योंकि वे वस्तुत: मस्तिष्कविहीन स्थिति में पहुंच चुके थे। उनके विवेक और मनोबल पर पूरी तरह जोन्स का नियंत्रण स्थापित हो चुका था।

गुयाना में कम्यून

जोन्स यह बात भली प्रकार जानता था कि अमरीकी समाज और सरकार अपने देश की धरती पर उसे मनोवांछित प्रयोग नहीं करने देगी, अत: वह लगभग एक हजार अनुयायियों—स्त्रियों, पुरुषों और बच्चों तथा उनकी संपत्ति को साथ लेकर दक्षिणी अमरीका चला गया और वहां उसने गुयाना के सुदूर जंगलों में

घोर भोगवाद तथा पदार्थवाद में आकंठ डूबे हजारों कमजोर इच्छाशक्ति वाले अमरीकियों ने ढोंगी गुरु जिम जोन्स को बिना किसी तर्क के अपना मसीहा मान लिया।

कम्यून की स्थापना की। वहां उसने एक जनता-मंदिर का निर्माण किया, जो जोन्स गुरु-संस्कृति तथा उसकी गतिविधि का प्रमुख केन्द्र बन गया। कम्यूनवासी मंदिर की वेदी पर जोन्स की पूजा उसे सजीव भगवान मानकर करते थे।

कम्यून एक अर्थ में एक पशुपालन केन्द्र था, जिसमें स्त्रियां और पुरु सामूहिक जीवन व्यतीत करते थे तथा एकांत की तनिक गुंजाइश न थी। जोन्स व हरम की स्त्रियों को छोड़कर अन्य सभी स्त्रियां कम्यून के सभी पुरुषों की सम्मिलित संपत्ति थीं तथा वे घृणित यौन-कर्मकांडों में सम्मिलित होती थीं। स्त्रियों को व्यवहारिक दृष्टि से वेश्या बना दिया गया था। उनकी कोख से जन्म लेने वाले बच्चे कम्यून की सम्मिलित संतान माने जाते थे।

कम्यून के जो सदस्य भयावह कर्मकांड और यौन-व्यभिचार के प्रति जुगुप्सा उत्पन्न होने के कारण कम्यून छोड़ना चाहते थे, उन्हें उनकी इच्छा के विपरीत बंदी बनाकर रखा जाता था तथा जो लोग सर्वोच्च गुरु जिम जोन्स की अधिकारवादी सत्ता के विरुद्ध विद्रोह करने की हिम्मत करते, उनका बिना सोचे-समझा सफाया कर दिया जाता और इस जघन्य कर्म से हत्यारों के मन में तनिक ग्लानि उत्पन्न होती।

सामूहिक आत्महत्या

इसके बावजूद कुछ हताश सदस्य भाग निकलने में सफल हो गये तथा जोन्स की पहुंच से परे पहुंच जाने पर उन्होंने मन को व्यथित कर डालने वाले अपने अनुभव सार्वजनिक तौर पर सुनाये, जिनके कारण समाज में चिंता उत्पन्न हो

अपने मसीहा जिम जोन्स के आदेश पर उसके अनुयायियों ने बेहिचक सामूहिक आत्मघात कर लिया।

इसी चिंता के कारण कैलीफोर्निया के संसत्सदस्य लियो र्‌यान ने स्वयं जोन्स टाउन जाकर जिम जोन्स के विरुद्ध लगाये आरोपों—अपने अनुयायियों को उनकी इच्छा के विपरीत बंदी बनाकर रखना, उन्हें उनकी समस्त सांसारिक संपदा, जीवन, जीवन संगियों तथा संतान से वंचित कर देना तथा कम्यून में व्याप्त यौन-मुक्ताचार की जांच करने के अपने मंतव्य की घोषणा कर दी।

कहा जाता है कि जब जिम जोन्स को यह बताया गया कि र्‌यान 18 नवंबर, 1978 को जोन्स टाउन पहुंच रहा है, तब उसने अपने अनुयायियों को आदेश दिया कि र्‌यान तथा उसके साथियों को जोन्स टाउन से 12 किलोमीटर दूर बंदरगाह कैतुमा के हवाई अड्‌डे पर घेर लो तथा उन सब की हत्या कर डालो। जोन्स के शिष्यों ने हवाई अड्‌डे की नाकाबंदी कर ली तथा लियो र्‌यान, नेशनल ब्रॉडकास्टिंग कार्पोरेशन के डौन हैरिस, फोटोग्राफर ग्रेगरी रॉबिन्सन, कैमरामैन रॉबर्ट ब्राउन तथा एक महिला पैट्रीशिया पार्क्स की हत्या कर डाली। ब्राउन उस जघन्य हत्या-दृश्य को उस समय तक अपने कैमरे में कैद करता रहा, जब तक कि स्वयं सिर में गोली लगने से हवाई-पट्‌टी पर ढेर ही नहीं हो गया।

जोन्स एक कायर अपराधी था। वह अपने कर्म के परिणाम का सामना करने के लिए तैयार नहीं था। जब उसे यह ज्ञान हुआ कि र्‌यान-टोली के कुछ सदस्य उसके शिष्यों की गोलियों से बचकर भाग निकलने में सफल हो गये हैं, तब उसका संतुलन बिगड़ गया और उसने कम्यून के समस्त सदस्यों को तथाकथित जनता-मंदिर के सामने मैदान में इकट्‌ठा कर लिया तथा उन्हें सामूहिक आत्महत्या का आदेश दे दिया। उसने ऐसे अवसर के लिए ही सायनाइड विष के

ढेर सारे कैप्सूल इकट्ठे कर रखे थे। सबसे पहले शिशुओं और बच्चों को विष देकर समाप्त कर दिया ग"ग। उसके बाद वयस्कों को एक दूसरे से लिपटकर सायनाइड कैप्सूल सटकने के लिए कहा गया। यह मृत्यु-पर्व था, मसीहा ने अपने अनुयायियों को आश्वासन दिया कि वह अगले जन्म में उन अभागों से पुनः मिलेगा।

वे सब एक साथ मंदिर के मैदान पर लुढ़क गये और जब शैतान मसीहा जोन्स को यह विश्वास हो गया कि वे सब मर चुके हैं तो उसने अपनी जान स्वयं ले ली। उसका शव वेदी पर पड़ा मिला। उसके सिर में गोली का घाव था।

शंकाशील गुरु अपने मन में यह विश्वास लेकर मरा कि उसके शिष्यों में कोई भी उसकी अपराधपूर्ण अहम्मन्यता की कुत्सित गाथा सुनाने के लिए जीवित नहीं बचा है, परंतु ऐसा न था। उसके कम्यून के कुछ बागी सदस्यों ने सायनाइड कैप्सूल सटकने का स्वांग रचा और वे मुर्दों की तरह भूमि पर लुढ़क गये। पिस्तौल चलने की आवाज ने उन्हें इस ओर से आश्वस्त कर दिया कि आततायी गुरु का अंत हो चुका है। अब उन्हें अपनी आजादी का विश्वास हो गया। वे उठे और तेजी से सभ्य जगत में लौट पड़े। उन्होंने हवाई अड्डे तथा कम्यून में हुए जघन्य अपराध के बारे में पुलिस को सूचित किया। मानवीय मन को सम्मोहित करने तथा उन पर विजय प्राप्त करने की कला में पारंगत बाजीगर के इशारे पर 900 से अधिक अमरीकी नागरिकों का जीवन नष्ट हो गया।

20 नवंबर को जोन्स टाउन में संसत्सदस्य लियो र्यान के गुम होने की खबर प्रकाशित हुई। छः दिन बाद अमरीकी सैनिकों ने कम्यून से 400 शव प्राप्त किये। 29 नवंबर को शवों की संख्या 909 पर पहुंच गयी थी तथा अमरीकी सैनिक अंतिम शव लेकर जोन्स टाउन से अमरीका के लिए रवाना हो गये थे। ■■

मलिक ताऊस बिरादरी

"कमरे में प्रधान-पुरोहित समाधिस्थ थे। वे फर्श पर बैठे थे और उनकी पुतलियां अपलक मूर्ति पर टिकी थीं। उनका शरीर अकड़ गया था। एक सदस्य बाहर जाते समय अचानक उनसे छू गया। वह वहीं घुटने के बल नीचे को धंसता चला गया और समाधिस्थ हो गया, उसका शरीर अकड़ गया, आंखें मयूर देव की मूर्ति पर जा टिकीं।"

"मुझे लग रहा था कि यदि मैं लगातार मूर्ति को देखता रहा और संगीत सुनता रहा तो मेरी चेतना लुप्त हो जायेगी। मेरा शरीर धीरे-धीरे कठोर होने लगा। समय की चेतना पूरी तरह लुप्त हो गयी और मन एकदम खाली हो गया। मुझे लगा कि मयूर की शक्ति मुझमें प्रवेश कर रही है। इस स्थिति के बावजूद मेरी चेतना सजग बनी हुई थी, पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सजग। मेरा मन एक अनिर्वचनीय आह्लाद और एक अजीब पूर्णता की तृप्ति से भर गया। मुझे लगा कि मेरे भीतर नयी शक्ति का संचार हो रहा है।"

"मैंने अपनी स्थिति की कसौटी के लिए एक समस्या पर सोचना शुरू किया। मुझे आश्चर्य है कि मुझे उसका हल तुरंत सूझ गया और बाद में मैंने महसूस किया कि वह एकदम सही हल था। मेरी स्मृति बहुत प्रखर हो गयी और जिन बातों को मैं प्रायः भूल चुका था, उनके बारे में सोचने पर मुझे उनका पूरा ब्यौरा याद आ गया।"

"मैं सोचता रहा कि कहीं मुझे चाय और केक में कोई चीज खिला तो नहीं दी गयी, जिससे मेरे मस्तिष्क की शक्ति का विस्तार हो गया है, लेकिन मैंने देखा कि मैं पूरी तरह अपने नियंत्रण में था और मुझ पर किसी प्रकार के नशे का प्रभाव न था। मैं अचानक उठा और सिर झटककर बाहर निकल आया। सब कुछ सामान्य लग रहा था, कहीं भी कोई परिवर्तन न था। यह सब मेरे लिए एक रहस्यात्मक अनुभव था।"—ये शब्द एरकॉन डैरॉल के हैं, जो मलिक ताऊस मंदिर में पहली बार गया और वहां सामूहिक उपासना में शामिल हुआ था।

डैरॉल ने इस बिरादरी के बारे में काफी कुछ सुना था तथा उसके मन में इसके बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा उत्पन्न हो गयी थी। अनेक सूत्रों और स्रोतों के माध्यम से वह अंततः मलिक ताऊस (मयूर देव) मंदिर के प्रधान-पुरोहित के साथ फोन पर संपर्क स्थापित करने में सफल हो गया।

दस दिन बाद प्रधान-पुरोहित ने उसे फोन पर कहा कि वह अमुक स्थान पर उन्हें मिले। ठीक समय पर एक कार उसके सामने आकर रुकी। कार की नंबर प्लेट धूल से ढंकी हुई थी। कार में पीछे की सीट पर एक आत्मविश्वासी महिला बैठी थी उसने डैरॉल से बातें शुरू कीं। उसे डैरॉल पर शंका थी कि वह मलिक ताऊस संगठन के रहस्य लेकर उनका दुरुपयोग करेगा। उसने कहा, "आप गोपनीयता की शपथ लेकर कहें कि आप हमारा पता किसी को न देंगे तथा यदि आपको हमारे संप्रदाय के सिद्धांत पसंद आयें तो आप हमारी मदद करेंगे, अन्यथा यह प्रतिज्ञा करें कि आप हमें हानि पहुंचाने की कोशिश नहीं करेंगे।" डैरॉल ने वचन दिया और शपथ ली।

मलिक ताऊस की उपासना

शाम के झुटपुटे में वह कार लंदन की एक बाहरी बस्ती के एक मामूली से घर के सामने जा रुकी। सामने के कमरे में घुसते ही प्रधान-पुरोहित ने डैरॉल का स्वागत किया। दरवाजे में जैतून के तेल का एक चिराग जल रहा था, भीतर आने वाला प्रत्येक व्यक्ति उसका धुआं अपनी हथेलियों पर लेता था। यह शुद्धिकरण की प्रक्रिया थी।

कमरे में 10-12 लोग थे, वे सब आम दुनियादारी की बातें कर रहे थे। इतने में ही सब के सामने हरी चाय परोसी गयी और खाने के लिए छोटे-छोटे केक। साथ वाले कमरे से संगीत की ध्वनि आ रही थी। एक-एक करके लोग उस कमरे में चले गये। डैरॉल के साथ केवल एक बैरिस्टर वहां रह गया। वे लोग दरवेशों के बारे में बातें करते रहे। इतने में प्रधान-पुरोहित ने आकर डैरॉल की बांह पकड़ी, उसे उठाया और भीतर चलने को कहा।

एक छोटे से रास्ते से होकर सब लोग दूसरे कमरे के दरवाजे पर पहुंचे। मुख्य पुरोहित ने जूते बाहर ही उतार दिये, दूसरों ने भी। सामने तांबे के एक बर्तन में जल हिलोरें ले रहा था और उसमें मयूर की प्रतिमा खड़ी थी। लोग उसके सामने अर्द्धचंद्राकार बनाकर बैठे हुए अपने-अपने मूढ़ों पर झूम रहे थे। संगीतकार अपने गिटार पर मादक धुन निकाल रहा था, जिससे समूचा वातावरण पवित्र और तंद्रामय बन गया था। थोड़ी देर तक सब लोग झूमते रहे, किसी ने अपना मुंह अपनी हथेलियों से ढंक रखा था और किसी ने बांहें सीने पर बांध रखी थीं। आंखें सब की मुंदी थीं। थोड़ी देर बाद एक सदस्य उठा, उसने कागज का एक टुकड़ा लपेटकर पानी में फेंका और कमरे से बाहर चला गया। इसके बाद लोग एक-एक करके उठते और मूर्ति के पास जाकर दो बार 'धन्यवाद' कहते तथा बाहर चले जाते।

यह लंदन के 16 मलिक ताऊस केन्द्रों में से एक केन्द्र था। लंदन में मलिक ताऊस का मुख्य मंदिर लंदन की एक प्रतिष्ठित बाहरी बस्ती के एक तहखाने में है, जिसमें एक सिरे पर छोटे से जलाशय के बीच मोर की आठ फुट ऊंची प्रतिमा खड़ी

है। प्रतिमा के पांव जल में डूबे हैं। साधक उसके सामने अर्द्धचंद्राकार बनाकर सम्मोहन में नाचते रहते हैं। एक कोने में छिपा ढोल इस तरह पीटा जाता है कि वहां मौजूद किसी भी मनुष्य के लिए खामोश रहना असंभव है। इस मंदिर का प्रत्येक उपासक एक लंबा सफेद चोगा पहनता है, जिसके नीचे उसके दूसरे कपड़े पूरी तरह ढंक जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के सफेद चोगे में सीने (छाती) पर मोर का कसीदा कढ़ा होता है—किसी पर हरे धागे से, किसी पर नीले से और किसी पर लाल से।

ये लोग यहां पखवाड़े में एक बार इकट्ठे होते हैं। ये मलिक ताऊस (मयूर देव) यानी एंजिल पीकॉक के उपासक हैं। मलिक ताऊस के मुंह में सांप दबा हुआ है। सांप और मोर को शक्ति का प्रतीक माना गया है। मलिक ताऊस की उपासना इंग्लैंड में सन् 1913 में शुरू हुई। उसका प्रणेता ईराक का एक शेख था, जिसका नाम केवल उन लोगों को मालूम है, जिन्हें इस कल्ट की दीक्षा मिली है और उन्होंने उसे गोपनीय रखने की शपथ ली है। कोई भी सात सदस्य मिलकर एक केन्द्र की स्थापना कर सकते हैं। वे मोर को वृद्धि का और सांप को पुनर्रचना का प्रतीक मानते हैं।

तंद्रा और समाधि का सुख

मलिक ताऊस एक गोपनीय कल्ट है और उसका उद्देश्य तंद्रा तथा समाधि के व्यक्तिगत और सामूहिक अनुभव की प्राप्ति तथा ऐसे बंधुत्व अथवा बिरादरी का निर्माण करना है, जिसके सदस्य अपने भौतिक जीवन में एक दूसरे की सहायता करते हैं। मलिक ताऊस की साधना के दो लक्ष्य हैं—(1) आध्यात्मिक साधना द्वारा मानसिक शांति प्राप्त करना और (2) भौतिक जगत में सफलता प्राप्त करना।

इस बिरादरी के सदस्यों को विश्वास है कि सफलता के लिए बिरादरी के सहयोग और दैवी चमत्कार—दोनों की आवश्यकता होती है। मलिक ताऊस बिरादरी के सदस्य प्रत्येक कार्य के आरंभ में मलिक ताऊस (मयूर देव) का आह्वान करते हैं। दुकान खोलने या कारखाने लगाने के समय वे बिरादरी के सदस्यों की उपस्थिति में उसके अहाते में मलिक ताऊस की पूजा करते हैं तथा यह मानते हैं कि वातावरण में मलिक ताऊस के व्याप्त हो जाने पर सफलता निश्चित है।

इस बिरादरी की मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति के मन में अपूर्णता और अतृप्ति की भावना रहती है। लोग इस भावना से छुटकारा पाने के लिए व्यवसाय करते हैं, धन कमाते हैं, विवाह करते हैं और अपनी विभिन्न रुचियों के अनुसार नाना प्रकार के कार्य हैं, लेकिन अधिकांश व्यक्ति मनचाही पूर्णता प्राप्त नहीं कर पाते हैं और उनके मन में रिक्तता ज्यों की त्यों बनी रहती है। मलिक ताऊस की उपासना इस रिक्तता को दूर करने का उपाय है।

नये सदस्यों की दीक्षा

बिरादरी के सदस्य समय-समय पर नये लोगों को संप्रदाय में दीक्षा दिलाने के लिए प्रधान-पुरोहित के पास ले जाते हैं। वह सबसे पहले यह पता लगाता है कि नया जिज्ञासु व्यसनों तथा ऋण में तो नहीं फंसा है। इन दोनों से मुक्त व्यक्ति को पुरोहित अपने पास बुलाता है और यह जानने की कोशिश करता है कि उसमें अपूर्णता तथा रिक्तता के प्रति असंतोष है या नहीं। यदि उसमें वह असंतोष है तो उसे दीक्षा का पात्र मान लिया जाता है, लेकिन दीक्षा तत्काल नहीं दे दी जाती। उससे पहले हर उम्मीदवार को 'विकसित' किया जाता है, यानी उसके मस्तिष्क का प्रशिक्षण किया जाता है, उसे यौगिक क्रियाएं और ध्यान की विधि सिखायी जाती है, जिससे वह अपने मस्तिष्क और अपने विचारों पर नियंत्रण करना सीख जाता है। कभी-कभी प्रारंभिक अवस्था में उम्मीदवार को विकसित करने के लिए सम्मोहन का इस्तेमाल भी किया जाता है।

'विकास' की अवस्था में उम्मीदवार अपनी समस्याएं पुरोहित के पास ले जाता है। पुरोहित उससे उनके बारे में चर्चा नहीं करता, न उन पर कोई सामूहिक विचार ही होता है। इसके विपरीत उम्मीदवार से कहा जाता है कि वह अपना ध्यान अपनी तपस्या पर केन्द्रित करे और मलिक ताऊस की उपस्थिति में उसका हल प्राप्त करे। यदि उम्मीदवार को हल मिल जाता है तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह स्वयं को प्रधान-पुरोहित के हाथों में समर्पित कर दे। इस अवस्था में कुछ लोग दीक्षा लेने का इरादा छोड़ देते हैं। जो लोग टिक जाते हैं, उन्हें पुरोहित ध्यान और समाधि की विधि सिखाता है और जब उन्हें मलिक ताऊस की शक्ति में विश्वास हो जाता है तो वे इस बिरादरी के सदस्य बन जाते हैं

इस बिरादरी के सदस्य मंदिर के अलावा अपने घरों और कार्यालयों में भी मलिक ताऊस की प्रतिमा गोपनीय स्थानों पर रखते हैं तथा उसकी मदद से मायावी अनुभूतियां और रहस्यमय शक्तियां प्राप्त करते हैं।

शैतान का विरोध

मलिक ताऊस बिरादरी का शैतान से कोई वास्ता नहीं है। इस कल्ट का मत है कि शैतान की अपनी शक्ति नहीं होती, वह एक प्रकार का दुष्प्रभाव है, जो दुश्चिंतन के परिणामस्वरूप मस्तिष्क में पनप जाता है। अतः उसको अपने चिंतन में किसी प्रकार का स्थान नहीं देना चाहिए। उसके चिंतन का अर्थ है उसके अस्तित्व को स्वीकार करना और उसे वास्तविकता प्रदान करना। मलिक ताऊस संस्कृति मनुष्य के मस्तिष्क को दुश्चिंतन और बुराई से बचाना चाहती है, अतः वह शैतान का चिंतन नहीं कर सकती, उसका समूचा चिंतन रचनात्मक है।

मलिक ताऊस की उपासना का दर्शन ईराक के शेख आदि को प्राप्त हुआ था। पराजगत के रहस्यों की खोज में मलिक ताऊस संप्रदाय के संपर्क में आने वाली प्रथम पाश्चात्य रहस्यवादी दार्शनिक मदाम ब्लावत्स्की थीं। उन्होंने अपने ग्रंथ

पराजगत के रहस्यों की खोजों में मलिक ताऊस संप्रदाय के संपर्क में आने वाली प्रथम पाश्चात्य रहस्यवादी दार्शनिक मादाम ब्लावत्स्की

'ईसिस अनवेल्ड' के दूसरे खंड में भ्रांतिवश यह लिखा, "उन्हें शैतान-पूजक बताया जाता है। वे अपने शेख को बीच में लेकर उपासना के लिए बैठते हैं। ....फिर वे नाचते और उछलते-कूदते हैं। वे प्रायः रात के समय उपासना करते हैं और शैतान से डरते हैं।"

आस्थाएं

मलिक ताऊस संस्कृति के आदि-संस्थापक शेख आदि का जन्म ग्यारहवीं शताब्दी में हुआ था। इस संगठन में साधकों को 'मुरीद' और पुरोहितों को 'रूहान' कहा जाता है। रूहान शेख आदि के वंशज हैं। वे सफेद चोगा और काला साफा पहनते हैं। उनके बाद पीर होते हैं, जो काला चोगा और सफेद साफा पहने हैं। इस संस्कृति में महिलाओं को भी दीक्षा दी जाती हैं, जिन्हें 'फकीरिया' कहा जाता है।

इस बिरादरी का नित्यकर्म सूर्योपासना से शुरू होता है। उसके बाद सदस्य एक शालिग्राम जैसी शिला की प्रदक्षिणा करते हैं, जिस पर लिखा होता है—'मलिक ताऊस'। प्रदक्षिणा के समय वे बोलते जाते हैं: "सद् और असद् एक ही हैं। आओ, हम अपने देव के सम्मुख खड़े हों और उसकी प्रदक्षिणा करें।"

मलिक ताऊस बिरादरी के लोग पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं, पशु योनि में जन्म होना पिछले जन्म के कुकर्म का और मनुष्य योनि में जन्म पुण्यों का फल माना जाता है। उपासना के समय साधकों के अलावा समूह में कुछ गायक और कुछ

नर्तक भी होते हैं। कव्वाल प्रशस्ति गीत गाते हैं, जिन्हें साधक दोहराते जाते हैं। उसके बाद मलिक ताऊस शब्द का सौ बार जोर-जोर से जाप होता है। अंत में नर्तक जैतून के तेल के 17 चिराग जलाते हैं और वृत्ताकार रख देते हैं। साधक पूर्ण पवित्रता के साथ लंबे चोगे पहनकर उनके चारों ओर घेरा बना लेते हैं। अब नर्तक नाचते हुए भीतर के वृत्त से बाहर के वृत्त में आते हैं। वे मौन रहते हैं, उनकी बांहें हिलती रहती हैं और हथेलियां ताली बजाती हैं। नर्तकों के कदम तेज होते ही साधकों का स्वर ऊंचा हो जाता है तथा मुरीद लोग तंद्रा के प्रभाव में आने लगते हैं। इस विधि को शुद्धि और दैवी आशीर्वाद की प्रक्रिया माना जाता है।

शेख आदि का उपासनागृह लालेश के नाम से प्रसिद्ध है। वहां द्वार के समीप बने छोटे से सांप को हर रोज चिराग के काजल से चमकाया जाता है। वहां अखंड ज्योति जलती है। ज्योति को आत्मा के शाश्वत स्वरूप का और सांप को पुनर्जन्म का प्रतीक माना जाता है। दरगाह में दीक्षा लेने वाले को शेख की ओर से मोटे कंबल का एक चोगा दिया जाता है, उसके गले में काली और लाल ऊन का धागा बांधा जाता है और कमर में चमकदार लाल ऊन की बुनी हुई पेटी बांधी जाती है। दीक्षा से पहले साधक 40 दिन का उपवास करता है और उसने स्नान के द्वारा पवित्र किया जाता है। यह पापमुक्ति की विधि है।

मलिक ताऊस संस्कृति, मलिक ताऊस के माध्यम से दैवी-ऊर्जा के आह्वान, पुनर्जन्म में आस्था, दैवी प्रकाश अर्थात् ज्ञान और समाधि के द्वारा दैवी आनंद की अभीप्सा और मलिक ताऊस संस्कृति के अनुयायियों के बीच एक गुप्त, अनुल्लंघनीय और विश्वसनीय गठबंधन की प्रतीक 'मलिक ताऊस बिरादरी'—इन चार खंभों पर टिकी हुई है।

भारतीय मूल

यहां यह बात बहुत दिलचस्प है कि मलिक ताऊस अर्थात् मयूर देव हिन्दू मान्यताओं के अनुसार भगवान शिव के पुत्र भगवान कार्तिकेय के दैवी वाहन हैं तथा सांप, जिसे मलिक ताऊस संस्कृति में पुनर्जन्म का प्रतीक माना गया है, भगवान शिव के आभूषण हैं। भगवान शिव को संहार का देवता माना गया है, परंतु यह संहार सृष्टि का अंत नहीं वरन् नवसृजन की भूमिका होता है। सांप उसी नवसृजन अथवा पुनर्जन्म के प्रतीक हैं। शालिग्राम शिला की प्रदक्षिणा से भी इस बात का संकेत मिलता है कि मलिक ताऊस संस्कृति का उदय प्रछन्न रूप से शिव-संस्कृति से हुआ होगा। ■■

सिनानौन—एक वैकल्पिक समाज

डीडरिक के एक मित्र ने उसे सिम्पोजियम में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया। डीडरिक से सिम्पोजियम शब्द का उच्चारण ही न हो पाया। वह बार-बार चेष्टा करता और सिन पर आकर रुक जाता। उसके मित्र ने दूसरा शब्द सुझाया—सेमिनार। डीडरिक सेमिनार का उच्चारण भी नहीं कर पाया और उसके मुंह से एक सर्वथा नया शब्द फूट पड़ा—सिनानौन। सिनानौन....! यह शब्द डीडरिक की चेतना पर अंकित हो गया और यह शब्द चंद वर्षों में [illegible] प्रसिद्ध हो गया।

सिनानौन ने ऐसे लाखों लोगों के जीवन में आशा और आनंद [illegible] दिया, जिन्हें इस बात की आशा ही नहीं रह गयी थी कि वे मादक [illegible] छूटकर नये सिरे से जीवन की शुरुआत कर सकेंगे। सिनानौन [illegible] कोटि की संस्कृति का प्रतीक बन गया, जिसने एक वैकल्पिक [illegible]

डीडरिक एक जमाने में बेहद मदिरा पिया करता [illegible] उसे अपने पिता से उत्तराधिकार में मिली थी। डीडरिक [illegible] का ही था, तभी उसका पिता नशे में धुत्त एक [illegible] उसकी विधवा मां ने फिर से विवाह कर लिया था [illegible] सौतेले पिता से घृणा करने लगा था। हाई [illegible] मदिरा-पान शुरू कर दिया। हाई स्कूल [illegible] लेने के लिए कॉलेज में भर्ती हुआ, परंतु [illegible] उसे दूसरे वर्ष में ही कॉलेज छोड़ना पड़ा [illegible] और वह अनेक कंपनियों में [illegible] उसने अच्छा पैसा कमाया।

अब वह पूरा पियक्कड़ [illegible] उच्च अधिकारी के रूप में [illegible] के कारण कभी-कभी [illegible] कंपनियों की नौकरियां [illegible] एक दो शादियां भी [illegible] पत्नी भी उसे छोड़कर [illegible] कोई भी कंपनी [illegible]

उसे सरकार से मिलने वाले वेरोजगारी भत्ते से गुजर करने के लिए विवश होना पड़ा और वह कैलीफोर्निया के ओशन पार्क में रहने लगा। वहां वह अल्कोहॉलिक एनॉनिमस नामक संस्था का सदस्य हो गया। उसके मित्रों में दोनों प्रकार के लोग थे—मदिरा-प्रेमी और मदिरा-विरोधी तथा दोनों ही का उसके घर आना-जाना बना रहता था। अंत में मदिरा-प्रेमी उसे छोड़ गये और अल्कोहॉलिक एनॉनिमस क्लब ने उसके साथ घनिष्ठ सबंध बनाये रखे। ठीक यही समय था जब 45 वर्षीय् डीडरिक ने सिनानौन-कल्ट की कल्पना की।

सिनानौन-दर्शन

डीडरिक ने सिनानौन की स्थापना सन् 1958 में की। उसका चित्त उच्च आदर्शों और मानवीय मूल्यों से ओत-प्रोत था। सिनानौन मूल्य-व्यवस्था का आधार व्यक्ति के कार्यों के लिए स्वयं उसकी जिम्मेदारी का दर्शन है, अर्थात् यह कि व्यक्ति को स्वयं अपनी आंतरिक शक्तियों और अपने व्यवहार और जीवन के सुधार तथा नियंत्रण के लिए आत्म-बल जागृत करना होगा। सिनानौन यह मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति में यह जानने की क्षमता है कि सत्य अर्थात् शाश्वत-सत्य क्या है, उसकी यह क्षमता दैवी अथवा अज्ञात शक्तियों की देन है।

डीडरिक को महान मानवतावादी दार्शनिक राल्फ वाल्डो इमरसन और अब्राहम मेसलो के विचारों से अत्यंत सघन प्रेरणा प्राप्त हुई। इमरसन का विचार है कि ईश्वर ने मनुष्य को ज्ञान की सहज शक्ति प्रदान की है। मनुष्य को केवल इतना करना होता है कि वह अपने भीतर विद्यमान सत्य अथवा ज्ञान को खोज निकाले और अपने अंत:करण की आवाज के अनुसार आचरण करे। अंत:करण की आवाज ही सत्य का स्वर है। मेसलो ने इमरसन के विचारों को आधुनिक मनोविज्ञान की शब्दावली में प्रस्तुत किया है। मेसलो व्यक्ति के आत्म-निर्माण का प्रवक्ता है। डीडरिक इस विचारधारा का प्रवल समर्थक है और वह ऐसा मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति पर इस बात की जिम्मेदारी है कि वह अपने आपको बुराइयों से मुक्त करे और अपने प्रयास द्वारा आत्म-निर्माण करे। हां, वह यह बात अवश्य स्वीकार करता है कि व्यक्ति का यह आत्म-परिष्कार एक ऐसे वैकल्पिक समाज में ही सुगम हो सकता है, जो उसे इसके लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करे तथा उसके पुनर्वास में सहायक सिद्ध हो।

निगम

सिनानौन एक आंदोलन है, एक कल्ट अथवा संस्कृति है और एक ऐसी वैकल्पिक जीवन प्रणाली है, जिसमें अपराध, हिंसा और मादक द्रव्यों तथा मदिरा से पूर्णतया मुक्त वातावरण पर बल दिया जाता है। सिनानौन दो पृथक् सामाजिक इकाइयों के रूप में संगठित हुआ है। उसकी एक इकाई वह निगम है, जिसकी स्थापना डीडरिक ने सन् 1958 में 33 हजार डॉलर के अपने बेरोजगारी भत्ते के चैक से की थी। यह निगम एक लाभ-हानि रहित निकाय है और उसमें न कोई

विविध प्रवृत्तियों में भाग लेते हैं और उसमें वे सामाजिक संगठन भी शामिल हैं, जो उन लोगों के जीवन का पुनर्निर्माण करते हैं।

सिनानौन समुदाय की जीवन-पद्धति में व्यसनों का कोई स्थान नहीं है। सिनानौन में मदिरा और अन्य मनोरंजनकारी मादक द्रव्यों के प्रयोग की सर्वथा मनाही है। उसके सदस्यों को किसी प्रकार की हिंसा अथवा एक दूसरे के विरुद्ध हिंसा की धमकी देने की अनुमति नहीं दी जाती। समुदाय के भीतर तू-तू, मैं-मैं और लड़ाई-झगड़े की कोई गुंजाइश नहीं है। उसके सदस्यों को गोपनीयता का अधिकार नहीं होता और उनके व्यक्तिगत जीवन की जांच की खुली छूट रहती है।

सिनानौन-जीवन का सबसे अधिक प्रमुख पक्ष जीवन की विभिन्न सुविधाओं में उसके सदस्यों की साझेदारी और उन सुविधाओं का सामूहिक उपयोग है। भोजन सामूहिक भोजनालयों में तैयार किया जाता है और उसके सदस्य सामुदायिक भोजन-गृहों में बैठकर भोजन करते हैं। समस्त सामाजिक मेल-मिलाप सामूहिक-कक्ष में होता है। विवाहित जोड़ों के निजी शयनकक्षों के प्रयोग की अनुमति होती है परंतु अन्य सब लोगों को सामूहिक शयनागारों अथवा कमरों में मिल-जुलकर रहना होता है। जब कोई अविवाहित जोड़ा निजी शयनगार की मांग करता है तो उसे अस्थायी तौर पर अतिथि-गृह के प्रयोग की अनुमति दे दी जाती है। बच्चे सामूहिक-कक्षों में रहते हैं। उन्हें अपने माता-पिता के साथ रहने की अनुमति नहीं दी जाती।

परंतु यह निष्कर्ष निकालना सही नहीं होगा कि सिनानौन अपने सदस्यों पर त्यागपूर्ण जीवन-पद्धति लादता है। वहां का जीवन काफी आरामदेह और सुविधाजनक होता है। प्रत्येक सदस्य को यह छूट है कि वह किसी भी सिनानौन समुदाय में शामिल हो जाये और किसी भी स्थान पर सिनानौन-गृहों में रहने लगे। सिनानौन-गृहों में परिवार जैसा वातावरण रहता है और उसके सदस्य एक स्थान से दूसरे स्थान पर आते-जाते रहते हैं।

सिनानौन-गृह अनेक स्थानों पर फैले हुए हैं—सानफ्रांसिस्को, ओकलैंड, सान-डियागो, मिशिगन, सांटा-मौनिका और न्यूयार्क। सबसे बड़े सिनानौन-गृह में 500 सदस्य एक साथ रहते और काम करते हैं। सिनानौन सदस्यों का स्थान हमेशा अदलता-बदलता रहता है। सिनानौन जीवन की एक अनूठी व्यवस्था यह है कि उसमें भाग लेने वाले सभी लोग आपस में संवाद स्थापित कर लेते हैं और एक दूसरे के जीवन को निकट से देख पाते हैं।

सिनानौन-गृहों में अंतर्मुखी जीवन पर बल दिया जाता है। सामुदायिक जीवन में भाग लेने वाले सभी लोगों को इस कठोर नियम का पालन करना होता है कि समूची शक्ति समुदाय के भीतर ही विनियोजित की जाये और समुदाय से बाहर उसका अपव्यय न किया जाये। सिनानौन-गृहों के निवासी अपने मित्रों, संबंधियों तथा अन्य लोगों से मिलने के लिए सिनानौन-गृहों से बाहर नहीं जाते। उन्हें जिन

लोगों से मिलना होता है अथवा जो लोग उनसे मिलना चाहते हैं, [illegible]
सिनानौन-गृहों में आमंत्रित कर लिया जाता है।

सिनानौन-गृहों में व्यक्तित्व निर्माण की अनेक सुविधाएं उपलब्ध [illegible]
गयी हैं—सार्वजनिक पुस्तकालय व्यवस्था, टेलीविजन और सार्वजनिक [illegible]
संगीत के रेकार्डों तथा फिल्मों के वीडियो-कैसेटों का भारी संग्रह, सिनानौन के
थियेटरों में नयी फिल्में दिखायी जाती हैं तथा सिनानौन-गृहों के निवासियों को सभी
प्रकार की मनोरंजन संबंधी तथा सांस्कृतिक गतिविधियों—संगीत, नृत्य, [illegible]
कठपुतलियों का नाच इत्यादि का आनंद लेने का अवसर प्राप्त होता है।

अधिकांश सिनानौन-गृहों में शनिवार की रात को दावतों का आयोजन
किया जाता है, जिनमें बाहर के लोगों भी भाग लेने का अवसर मिलता है। इन
दावतों में विश्राम और मनोविनोद पर बहुत बल दिया जाता है।

सिनानौन समुदाय में दो प्रकार के सदस्य होते हैं—निवासी और स्क्वायर।
निवासी सदस्य सामुदायिक जीवन में तो भाग लेते ही हैं, वे सामुदायिक कार्यों में भी
भाग लेते हैं तथा काम करने और धन कमाने के लिए समुदाय के बाहर [illegible]
समाज में नहीं जाते। स्क्वायर सदस्य सिनानौन समुदाय में रहते और उनके [illegible]
में भाग लेते हैं परंत वे काम करने और धन कमाने के लिए समुदाय से बाहर जाने के
मामले में पूर्णतया स्वतंत्र होते हैं। प्रत्येक स्क्वायर सदस्य से यह अपेक्षा की जाती है
कि वह सिनानौन समुदाय को कम-से-कम उतनी राशि शुल्क के रूप में [illegible]
चुकायेगा, जितनी कि उस पर खर्च होती है, परंतु अनुभव के आधार पर [illegible]
चलता है कि सिनानौन समुदाय के अधिकांश स्क्वायर सदस्य [illegible]
अतिरिक्त अपनी आय का बड़ा भाग सिनानौन को [illegible] करते हैं। [illegible]
समुदाय में स्क्वायर सदस्यों का प्रतिशत 15 से 20 के बीच रहता है तथा [illegible]
प्राप्त होने वाला धन 35 से 40 प्रतिशत के बीच

इसके अतिरिक्त स्क्वायर सदस्य सिनानौन समुदाय के [illegible]
निर्माण करते हैं, जिसमें चिकित्सक, [illegible]
लेखा-परीक्षक आदि का समावेश रहता है। इनसे सिनानौन समुदाय को
महत्त्वपूर्ण सेवाएं निःशुल्क प्राप्त होती हैं।

जहां तक स्थायी सदस्यों अथवा समुदाय के निवासी सदस्यों का [illegible]
उनके लिए असमान सुविधाओं का नियम है। बालकों और [illegible]
प्रत्येक समर्थ व्यक्ति को समुदाय के भीतर किसी न किसी [illegible]
समय काम अथवा श्रम करना होता है। समस्त सिनानौन [illegible]
सिनानौन निगम की ओर से निःशुल्क भोजन, वस्त्र, आवास, [illegible]
व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा मनोरंजन संबंधी गतिविधि में भाग लेने का अवसर
प्राप्त होता है। निगम के अंतर्गत कार्य करने वाले निवासी सदस्यों को [illegible]
लिए कुछ नकद राशि भी दी जाती है।

चेहरे पर काला मुखौटा लगाये सिनानौन के सदस्य हब्शियों से जुड़ी एक समस्या पर परस्पर विचार-विमर्श कर रहे हैं।

कठोर अनुशासन

सिनानौन ऐसे व्यक्ति का निर्माण करना चाहता है, जो इमरसन के शब्दों में, 'अंतर्मुखी' हो। इस प्रकार के व्यक्ति के निर्माण के लिए सिनानौन ने जिस व्यवस्था और प्रक्रिया की रचना की है, वह कठोर अनुशासन पर आधारित है और इसमें भाग लेने वाले व्यक्ति को यह स्वीकार करना पड़ता है कि उसके सभी कार्य आलोचना का विषय बन सकते हैं तथा उसे या तो सफलतापूर्वक अपना बचाव पेश करना होगा या अपना व्यवहार बदलना होगा।

सिनानौन की गतिविधि और उसके दर्शन के विकास तथा संगठन दोनों क्षेत्रों में डीडरिक ने केन्द्रीय भूमिका अदा की है। उसे सिनानौन समुदाय का मसीहा और चमत्कारी नेता माना जाता है। गंभीर व्यक्तित्व, मृदुल व्यवहार और नम्रतापूर्ण आचरण ने डीडरिक को एक संत, अवतार, भगवान अथवा धार्मिक नेता का स्वरूप प्रदान कर दिया है। सिनानौन समुदाय के सदस्य उसे स्नेहवश 'चक' कहकर पुकारते हैं।

डीडरिक स्वयं इनमें से किसी भी विशेषण को स्वीकार नहीं करता, वह कहता है, "मैं न तो भगवान हूं, न अवतार हूं, न संत हूं, न मेरे रूप में ईसा मसीह ने जन्म लिया है, न मैं स्वयं कोई मसीहा हूं।" मादक द्रव्यों की लत से मुक्ति की चिक़ित्सा में डीडरिक मादक पदार्थों के प्रयोग की अनुमति देने के लिए तनिक

डीड़रिक ने खेल-चिकित्सा में इसी कल्पना को लागू किया है। सिनानौन-गृह के सभी निवासी सप्ताह में कम से कम तीन बार एक निश्चित समय पर खेल-प्रक्रिया में भाग लेने के लिए दस-दस अथवा पंद्रह-पंद्रह के समूहों में एकत्र होते हैं। वे एक गोलाकार बनाकर बैठ जाते हैं, ज़िसके बीचोबीच एक आसन होता है, जिसे हॉट-सीट कहा जाता है। बारी-बारी से समूह का प्रत्येक सदस्य उस आसन पर बैठता है और जैसे ही वह यह आसन ग्रहण करता है, उसके चारों ओर बैठे हुए अन्य सदस्य एक-एक करके उस पर पाखंड, विकृत धारणाओं और प्रथाओं, असभ्य आचरण, अहंकार, भ्रांतियों, ग्रंथियों, असामाजिक व्यवहार अथवा सिनानौन-मर्यादाओं के उल्लंघन के आरोप लगाते हैं।

सदस्यों को कठोर और आक्रामक भाषा इस्तेमाल करने की छूट तो है ही, उन्हें ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित भी किया जाता है, परंतु शारीरिक हिंसा पूरी तरह वर्जित है। खेल में यह व्यवस्था है कि हॉट-सीट पर बैठा हुआ सदस्य अपने ऊपर किये हुए आक्रमणों से अपना बचाव कर सकता है तथा अपने आचरण को सही ठहराने के लिए तर्क दे सकता है, परंतु आरोप हमेशा सच्चे होते हैं और आरोप-भाजन भी इस तथ्य से परिचित होता है, अत: उसकी दृष्टि में बना उसका अपना बिंब, अलगाव का कवच और श्रेष्ठता की ग्रंथि सभी चकनाचूर हो जाते हैं।

आक्रमण इतने आवेग से किया जाता है कि वह पूरी तरह टूट जाता है और अपने चरित्र तथा आचरण का यथार्थ-परक आकलन करने लगता है। खेल के दौरान इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि हॉट-सीट पर बैठे हुए व्यक्ति पर आरोप लगाते समय उसकी नीयत पर शक न किया जाये और उस पर झूठे प्रयोजन आरोपित न किये जायें। आक्रमण का निशाना व्यक्ति का आचरण अथवा बाह्य व्यवहार ही हो सकता है। सिनानौन की चिंता का विषय समाज के भीतर दूसरों के प्रति किया गया व्यवहार ही है। यह भी सत्य है कि व्यक्ति के बाह्य व्यवहार में उसका चिंतन ही प्रतिबिंबित होता है। इसी कारण सिनानौन समाज में व्यक्तियों की चिंतन प्रक्रिया और उसके मन के सुधार की दृष्टि से मस्तिष्क-प्रशिक्षण के उपाय का सहारा लेता है। सिनानौन 'खेल-क्लबों' में बाहर के लोग भी शामिल हो सकते हैं। क्लब का शुल्क भाग लेने वाले की आर्थिक क्षमता के आधार पर निर्धारित किया जाता है, जो एक पैनी से लेकर 20 डॉलर मासिक तक कुछ भी हो सकता है। एक बार एक बीमा कंपनी के उपाध्यक्ष ने एक खेल-सत्र में भाग लिया। वह जैसे ही हॉट-सीट पर बैठा कि समूह के एक सदस्य ने उस पर आरोप लगाया, "न तो तुम अपनी पत्नी के प्रति वफादार हो, न तुम उसे प्यार ही करते हो।" इसके बाद तो उस पर आरोपों की बौछार होने लगी। किसी ने कहा, "तुम मूर्ख हो, जो इतना भी नहीं समझ पाते कि तुम्हारा पीछा करने वाली लड़कियां तुम्हारे पैसे और प्रभाव के पीछे दीवानी होती हैं, वे तुम जैसे खूसट से भला क्या प्रेम करेंगी?" इन आरोपों से उस बुज़ुर्ग के अहं को गहरी ठेस लगी और वह रो उठा। उसे रोता हुआ देखकर एक नीग्रो युवती ने उसे कठोर शब्दों में लताड़ा, "अब रोते क्यों हो? इससे

पर व्यक्तिगत अह नष्ट हो जाता है और हम एक दूसरे को अधिक समीपता से जान जाते हैं। इस मानसिक अवस्था में व्यक्ति ब्रह्मांड के साथ एकाकार हो जाता है।"

तंद्रा कार्यक्रम के पहले चार से आठ घंटे तक सदस्य दस-दस बारह-बारह की टोलियों में बैठते हैं, इसे समूह-सत्र कहा जाता है। समूह का मार्गदर्शन एक 'गडरिया' करता है। प्रथम सत्र की समाप्ति कर सदस्य घूमने, स्नान करने अथवा धूप सेंकने के लिए अलग-अलग निकल जाते हैं, लेकिन उन्हें सोने या एकदम अकेला हो जाने की अनुमति नहीं दी जाती। कुछ समय बाद सभी साधक मुख्य हॉल में इकट्ठे होते हैं। रोशनी धीमी कर दी जाती है और अगरबत्ती की भीनी महक वातावरण को सुगंधित कर देती है। आधुनिक संगीत बजाया जाता है और उसके समाप्त होने पर सभी लोग आधुनिक जगत में पॉप-संगीत के महत्त्व के बारे में चर्चा करने के लिए इकट्ठे होते हैं।

इसके बाद सृजनात्मक सत्र शुरू होता है, जिसमें प्रत्येक सदस्य एक अथवा अनेक सृजनात्मक गतिविधि में शामिल होता है, जैसे—किसी अमूर्त पेंटिंग में खड़िया से संशोधन। सृजनात्मक सत्र समाप्त होने के बाद लोग अपने स्थान से उठ जाते हैं और नृत्य, संगीत अथवा शोर मचाने में भाग लेते हैं। इस प्रकार की सामूहिक गतिविधियों में वैयक्तिक चेतना सामूहिक चेतना में विलीन हो जाता है और व्यक्ति अपना असामाजिक अंह खोकर समूह के साथ एकाकार हो जाता है।

खेल

सिनानौन में व्यवहार संबंधी प्रमुख विभाजक रेखा 'खेल-में' और 'खेल-के-बाहर' के बीच होती है। सिनानौन समुदाय के जीवन में खेल-के-बाहर अवस्था में सदस्यों से पूरी तरह तनाव-मुक्त, सभ्य, एक दूसरे के प्रति मित्रतापूर्ण, सहायताशील तथा प्रसन्नचित्त बने रहने की अपेक्षा की जाती है। दूसरों के व्यवहार के बारे में शिकायत करना प्रायः अच्छा नहीं माना जाता।

परंतु खेल-में प्रत्येक सदस्य को अपनी दमित भावनाओं और दृष्टि को अभिव्यक्त करने का अवसर मिलता है। 'खेल' वह सत्र है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को यह सीखने का अवसर प्राप्त होता है कि दूसरे लोग उसके व्यवहार के बारे में क्या सोचते हैं। समाज के साथ व्यक्ति के असामंजस्य तथा अलगाव को दूर करने के लिए 'खेल' को एक प्रमुख उपाय के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

डीडरिक कहता है कि ईसा मसीह ने जब अपने शिष्यों को यह उपदेश किया कि वे अपनी भूलों और कमजोरियों को दूसरों के सामने खुलकर स्वीकार करें, तब निश्चय ही उनका प्रयोजन समुदाय के सदस्यों को एक दूसरे के अंतःकरण का पहरेदार बनाना रहा होगा और इसके साथ ही उन्होंने यह भी सोचा होगा कि व्यक्ति अपने अपराधों को सार्वजनिक रूप से स्वीकार कर लेने के बाद हलकापन महसूस करेगा तथा समुदाय के सदस्य इस प्रकार पाप और दुर्बलता की खाई से बाहर निकल सकेंगे।

डीड़रिक ने खेल-चिकित्सा में इसी कल्पना को लागू किया है। सिनानौन-गृह के सभी निवासी सप्ताह में कम से कम तीन बार एक निश्चित समय पर खेल-प्रक्रिया में भाग लेने के लिए दस-दस अथवा पंद्रह-पंद्रह के समूहों में एकत्र होते हैं। वे एक गोलाकार बनाकर बैठ जाते हैं, जिसके बीचोबीच एक आसन होता है, जिसे हॉट-सीट कहा जाता है। बारी-बारी से समूह का प्रत्येक सदस्य उस आसन पर बैठता है और जैसे ही वह यह आसन ग्रहण करता है, उसके चारों ओर बैठे हुए अन्य सदस्य एक-एक करके उस पर पाखंड, विकृत धारणाओं और प्रथाओं, असभ्य आचरण, अहंकार, भ्रांतियों, ग्रंथियों, असामाजिक व्यवहार अथवा सिनानौन-मर्यादाओं के उल्लंघन के आरोप लगाते हैं।

सदस्यों को कठोर और आक्रामक भाषा इस्तेमाल करने की छूट तो है ही, उन्हें ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित भी किया जाता है, परंतु शारीरिक हिंसा पूरी तरह वर्जित है। खेल में यह व्यवस्था है कि हॉट-सीट पर बैठा हुआ सदस्य अपने ऊपर किये हुए आक्रमणों से अपना बचाव कर सकता है तथा अपने आचरण को सही ठहराने के लिए तर्क दे सकता है, परंतु आरोप हमेशा सच्चे होते हैं और आरोप-भाजन भी इस तथ्य से परिचित होता है, अतः उसकी दृष्टि में बना उसका अपना बिंब, अलगाव का कवच और श्रेष्ठता की ग्रंथि सभी चकनाचूर हो जाते हैं।

आक्रमण इतने आवेग से किया जाता है कि वह पूरी तरह टूट जाता है और अपने चरित्र तथा आचरण का यथार्थ-परक आकलन करने लगता है। खेल के दौरान इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि हॉट-सीट पर बैठे हुए व्यक्ति पर आरोप लगाते समय उसकी नीयत पर शक न किया जाये और उस पर झूठे प्रयोजन आरोपित न किये जायें। आक्रमण का निशाना व्यक्ति का आचरण अथवा बाह्य व्यवहार ही हो सकता है। सिनानौन की चिंता का विषय समाज के भीतर दूसरों के प्रति किया गया व्यवहार ही है। यह भी सत्य है कि व्यक्ति के बाह्य व्यवहार में उसका चिंतन ही प्रतिबिंबित होता है। इसी कारण सिनानौन समाज में व्यक्तियों की चिंतन प्रक्रिया और उसके मन के सुधार की दृष्टि से मस्तिष्क-प्रशिक्षण के उपाय का सहारा लेता है। सिनानौन 'खेल-क्लबों' में बाहर के लोग भी शामिल हो सकते हैं। क्लब का शुल्क भाग लेने वाले की आर्थिक क्षमता के आधार पर निर्धारित किया जाता है, जो एक पैनी से लेकर 20 डॉलर मासिक तक कुछ भी हो सकता है। एक बार एक बीमा कंपनी के उपाध्यक्ष ने एक खेल-सत्र में भाग लिया। वह जैसे ही हॉट-सीट पर बैठा कि समूह के एक सदस्य ने उस पर आरोप लगाया, "न तो तुम अपनी पत्नी के प्रति वफादार हो, न तुम उसे प्यार ही करते हो।" इसके बाद तो उस पर आरोपों की बौछार होने लगी। किसी ने कहा, "तुम मूर्ख हो, जो इतना भी नहीं समझ पाते कि तुम्हारा पीछा करने वाली लड़कियां तुम्हारे पैसे और प्रभाव के पीछे दीवानी होती हैं, वे तुम जैसे खूसट से भला क्या प्रेम करेंगी?" इन आरोपों से उस बुजुर्ग के अहं को गहरी ठेस लगी और वह रो उठा। उसे रोता हुआ देखकर एक नीग्रो युवती ने उसे कठोर शब्दों में लताड़ा, "अब रोते क्यों हो? इससे

तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। अपनी मूर्खता स्वीकार कर लो और अपनी पत्नी से क्षमा मांग लो।" उस व्यक्ति को यह बात पसंद आयी, उसने अपनी भूल स्वीकार कर ली तथा अपनी पत्नी से क्षमा मांग ली। इसके बाद वे पति-पत्नी प्रसन्नतापूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

डीडरिक यह स्वीकार करता है कि खेल के दौरान आक्रमण बहुत कठोर और कटु हो जाता है परंतु वह तर्क देता है कि जब व्यक्ति की आदतें नासूर की तरह विषैली हो जायें, तब फिर उनके निवारण के लिए चीरफाड़ अनिवार्य हो जाती है। खेल-सत्र का समापन एक मस्ती भरे नाच से होता है, जिसकी संगीत-रचना डीडरिक की तीसरी पत्नी ने की है। वह नीग्रो नस्ल की है।

मस्तिष्क प्रशिक्षण

कभी-कभी सिनानौन का पाला अत्यंत संवेदनशील व्यक्तियों से पड़ जाता है, जो सिनानौन की खेल-चिकित्सा को नीचतापूर्ण मानते हैं। ऐसे लोगों को तंद्रा अथवा खेल जैसी संवेगात्मक चिकित्सा के बजाय बौद्धिक चिकित्सा की आवश्यकता होती है। ऐसे लोगों के लिए मस्तिष्क-प्रशिक्षण-सत्र आयोजित किये जाते हैं, जिनका संचालन सिनानौन के वरिष्ठ सदस्य करते हैं।

मस्तिष्क प्रशिक्षण एक वैचारिक और तार्किक पद्धति है, जिसके द्वारा दोषयुक्त आचरण वाले व्यक्ति को यह महसूस कराया जाता है कि वह कहां गलती पर है तथा यह भी कि उसके हित की दृष्टि से यह आवश्यक है कि वह अपना सुधार करे और स्वैच्छिक पुनर्सामाजीकरण, अर्थात् समाज के साथ फिर से जुड़ जाने की प्रक्रिया द्वारा समाज के प्रति अलगाव की भावना को समाप्त कर दे। डीडरिक मानता है कि स्वच्छ समाज के निर्माण के लिए उन मुखौटों को नोंचना अत्यंत आवश्यक है, जिनके पीछे हम अपने गंदे आचरण को छिपाने की कोशिश करते हैं।

प्रवेश और जीवन पद्धति

सिनानौन में प्रवेश पाना कोई मुश्किल बात नहीं है, क्योंकि सिनानौन की स्थापना उन लोगों के लिए ही हुई है, जिन्हें उसकी मदद की आवश्यकता है। आमतौर पर सिनानौन में प्रवेश चाहने वाले व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है कि वह सामुदायिक जीवन के भीतर अपने ऊपर होने वाले खर्च का भुगतान करे, परंतु कभी-कभी थके-हारे और निर्धन लोग भी वहां चले आते हैं और सिनानौन-कार्यालय के बाहरी बरामदे में पड़ी हुई बैंच पर आसन जमा लेते हैं। ऐसे लोगों को भी भर्ती कर लिया जाता है। सिनानौन में पहली बार प्रवेश पाना जितना आसान है, वहां से बीच में ही छोड़कर जाने पर दोबारा प्रवेश पाना उतना ही कठिन है।

सिनानौन अपने सदस्यों के जीवन पर कठोर नियंत्रण और कठोर अनुशासन लागू करता है। यदि उसका कोई सदस्य झूठ बोलने की आदत नहीं छोड़ पाता तो

उसकी पीठ पर एक कार्ड पर यह लिखकर लटका दिया जाता है कि—मैं झूठा हूं। यौन दुर्बलताओं के प्रकट होने पर उसका सिर मुंडवा दिया जाता है।

सिनानौन समुदाय के सदस्य सवेरे नाश्ते के बाद 7 बजकर 45 मिनट पर प्रार्थना के लिए इकट्ठे होते हैं। प्रार्थना में असीसी के संत फ्रांसिस के उपदेशों का समावेश किया गया है। अंत में प्रभु से विनती की जाती है : "हे मेरे प्रभु, मुझे शक्ति दो कि मैं प्रेम की कामना करने के बजाय दूसरों को प्रेम दे सकूं। मुझे ज्ञान दो, जिससे कि मैं लेने के स्थान पर देने की विद्या सीख पाऊं।" 8 बजकर 15 मिनट पर दर्शन-शास्त्र का वर्ग लगता है। इस वर्ग के लिए संत इमरसन की उक्तियों का संग्रह किया गया है, जैसे—"ईश्वर उनकी मदद करता है, जो स्वयं अपनी मदद करते हैं।" उसके बाद 15 मिनट तक सदस्यों में से प्रत्येक को दिन भर के लिए सौंपे गये कार्य की घोषणा की जाती है, नये सदस्यों का परिचय कराया जाता है और खेल-सत्र होता है, जिसके अंत में सदस्य अपने-अपने काम पर चले जाते हैं।

दोपहर के भोजन के बाद तीसरे पहर का सत्र 4 बजे शुरू होता है। सदस्य अपने-अपने समूह के नेता के घर इकट्ठे होते हैं और एक घंटे तक परिसंवाद चलता है। जिन लोगों को तंद्रा, खेल अथवा मस्तिष्क-प्रशिक्षण के सत्रों में भाग लेना होता है, वे उनके लिए चले जाते हैं।

व्यक्तियों का पुनर्निर्माण

सिनानौन कपोल-कल्पित अथवा रहस्यवादी संस्कृति नहीं है। वह न तो अति चेतन और पराचेतन अस्तित्व को अस्वीकार करता है, न उसका आह्वान करता है। वह यह मानता है कि शक्ति का उदय व्यक्ति के भीतर से होता है तथा जो व्यक्ति अपने आचरण में परिवर्तन करना चाहता है, उसे अपने मन और मस्तिष्क को स्वयं ही अनुशासित करना होगा।

सिनानौन एक ऐसा समुदाय है, जो मानसिक रोगों की चिकित्सा के साथ-साथ तर्क-शक्ति पर आधारित एक वैकल्पिक जीवन-पद्धति भी प्रदान करता है। सिनानौन शैतान की बजाय ईश्वर और भलाई की शक्ति पर विश्वास करता है। वह मनुष्य को स्वभाव से असामाजिक स्वार्थी और संग्रहशील नहीं मानता। वह व्यक्ति और समाज के बीच अलगाव का गुणगान भी नहीं करता। इसके विपरीत सिनानौन मनुष्य को बुनियादी तौर पर सामाजिक, परोपकारशील और स्वभावतः प्रेम प्रदान करने वाला मानता है तथा उसने यह सिद्ध करके दिखाया है कि मनुष्य में ये गुण मौजूद हैं। सिनानौन का मूल प्रयोजन मनुष्य और समाज के बीच अलगाव को समाप्त करना है। उसका लक्ष्य व्यक्ति को समाज के साथ जोड़ना है।

काले जादू, तंत्र और हत्या का मसीहा: स्वामी ओंकारानंद

लुसाने की अदालत। आवाज लगती है: ''वेरेना प्लीन.... वेरेना प्लीन।'' एक निहायत खूबसूरत युवती आगे बढ़ती है। और गवाहों के कटघरे में खड़ी होकर संघीय न्यायाधीश अडोल्फ लुईशिगर के आदेश पर सच बोलने की शपथ लेती है। वेरेना का बयान शुरू होता है, ''तब मैं कुल 18 बरस की थी। मेरे माता-पिता स्वामी ओंकारानंद के भक्त थे। उन्होंने मुझसे आग्रह किया कि मैं स्वामी द्वारा स्थापित दिव्य ज्योति केन्द्र में भर्ती हो जाऊं। शुरू में तो मेरे मन में थोड़ी हिचकिचाहट हुई, मगर जल्दी ही मैंने स्वामी के सम्मुख समर्पण कर दिया, पूर्ण समर्पण। स्वामी मेरा सर्वस्व हो गया, मैं उसी के लिए जीने लगी। स्वामी के आदेश पर बहुत तड़के उठकर मैं ध्यान करती, उस समय वातावरण में उच्च कोटि की आध्यात्मिक तरंगें व्याप्त रहती थीं। हमारे प्रति पड़ोसियों का रुख कठोर होता चला गया और स्वामी के आदेश पर हमने विरोधियों का सफाया करने का व्रत ले लिया।''

''इस काम के लिए जादू-टोना, मंत्र-तंत्र और सयाने-चुड़ैलों की मदद लेने का फैसला किया गया। स्वामी के आदेश पर मैं छः महीने तक भारत में ऐसे व्यक्ति की तलाश में घूमती रही, जो जादू-टोने की मदद से दुश्मनों का सफाया कर सके। मेरी इस यात्रा का पूरा खर्च स्वामी ने उठाया। अंत में मुझे एक तांत्रिक बाबा मिल गया, जिसका नाम नरयाना बाबा था, मैं उसे साथ लेकर स्विट्जरलैंड लौट गयी।''

''उसके बाद तांत्रिक क्रियाओं का दौर शुरू हुआ। नरयाना बाबा ने मुझे देवी बनाया। बाबा मुझे लेकर एक नदी के किनारे गया, जहां उसने मुझे पूरी तरह नंगा होने को कहा। मैंने आदेश का पालन किया। अब बाबा ने तरह-तरह के संकेत किये और मंत्रोच्चार करते हुए एक चूज़े की गर्दन मरोड़ डाली और तड़प-तड़पकर मरते हुए चूज़े का रक्त मेरे नंगे बदन पर छिड़क दिया। बाबा मंत्र पढ़ता रहा, मैं सम्मोहित-सी हो गयी थी। अब बाबा ने मेरे साथ संभोग किया। मैं उस समय तक अक्षत योनि थी, यानी मैंने तब तक किसी के साथ भी संभोग नहीं किया था। संभोग-क्रिया से मुझे आघात लगा। मैं ठंडी पड़ गयी थी। यह आधी रात के बाद की

ात है। पूरी क्रिया में दो घंटे लगे। क्रिया निपटने पर बाबा ने मुझे उठने और नदी में स्नान करने का आदेश दिया। मैंने नदी में रक्त इत्यादि धो दिया। अगले दिन मैंने स्वामी से पूछा कि क्या मुझे यह सब सहन करते ही रहना होगा, क्या यह सब अनिवार्य हो गया है? इस पर स्वामी मुझसे बेहद नाराज हो गया। उसकी नाराजगी का कारण यह था कि मैंने उसके आदेश का आंख मूंदकर पालन करने के बजाय उसमें शंका उठायी।''

दिव्य ज्योति केन्द्र

अक्षत योनि कन्या वेरेना प्लीन को तांत्रिक क्रियाओं का भार उठाने का आदेश देने वाला यह स्वामी कौन था और उसने जिस दिव्य ज्योति केन्द्र की स्थापना की थी, उसके पड़ोसी उस केन्द्र से क्यों नाराज थे? तथा अपने पड़ोसियों को नष्ट करने के लिए केन्द्र ने क्या किया? ये कुछ दिलचस्प प्रश्न हैं जिनके उत्तर पिछले वर्षों में लुसाने की स्विस अदालत में लोमहर्षक रहस्यों के रूप में सामने आये।

हुआ यह कि सन् 1965 में एक मालदार प्रौढ़ा स्विट्जरलैंड से भारत आयी और यहां वह सिकंदराबाद-हैदराबाद के एक युवा स्वामी ओंकारानंद के सम्मोहन में फंस गयी तथा उसने स्वामी को अपने साथ स्विट्जरलैंड चलने का निमंत्रण दे दिया। स्वामी तो कृतकृत्य हो गया, वह यही तो चाहता था। सन् 1966 में स्विट्जरलैंड लौटकर उस धनी स्विस महिला ने ज्यूरिख के समीप औद्योगिक नगर विन्टरदूर की एक धनी बस्ती ब्रूहलबर्ग में 15 मकानों का एक कुंज खरीदकर स्वामी ओंकारानंद के हवाले कर दिया। स्वामी ने इसी कुंज में दिव्य ज्योति केन्द्र की स्थापना की।

स्वामी का प्रभाव धीरे-धीरे चारों ओर फैलने लगा। उसने कहा कि मैं हिंदू और ईसाई धर्मों के समन्वय और आध्यात्मिकता के वैज्ञानिक आधारों की खोज कर रहा हूं। आस्ट्रेलिया और अफ्रीका तक के लोग उसके चेले बन गये और उसको भारी मात्रा में आर्थिक व अन्य सहायता देने लगे। आस्ट्रेलिया की एक नर्स कैथरीन विघम उसके साथ केन्द्र में ही रहने लगी।

सवेरे चार बजे से ही केन्द्र से लाउड स्पीकरों पर मंत्रोच्चार होने लगता और देर तक भजन आदि चलते रहते। इससे पड़ोसियों को कष्ट होने लगा और उन्होंने केन्द्र का विरोध शुरू कर दिया, केन्द्र के विरुद्ध मुकदमे भी दायर किये गये, जिनमें सरकार से प्रार्थना की गयी कि केन्द्र बंद किया जाये और स्वामी को स्विट्जरलैंड से निकाल दिया जाये।

नागरिकों की प्रार्थना पर स्विस पुलिस ने स्वामी ओंकारानंद को चेतावनी दी कि यदि उसके विरुद्ध शिकायतें आती रहीं तो उसे देश से निकाल दिया जायेगा और उसका केन्द्र बंद कर दिया जायेगा। इस पर स्वामी ने केन्द्र की अध्यक्षता त्याग दी, मगर केन्द्र के अड़ोस-पड़ोस के लोग केन्द्र की गतिविधि से बहुत नाराज

हो चुके थे, अतः उन्होंने उसके बारे में समाचार-पत्रों में लंबे लेख लिखे तथा स्वामी और उसके केन्द्र की गतिविधि पर संसद में आपत्तियां उठवायीं। इस पर स्वामी ने स्वयं ही उन लोगों के विरुद्ध कोई 200 मुकदमे दायर किये, जिनमें से प्रत्येक को अदालत ने रद्द कर दिया।

विरोधियों को नष्ट कर दो

सन् 1975 में स्वामी ओंकारानंद ने अपने शिष्यों को आदेश दे दिया कि केन्द्र के विरोधियों को नष्ट कर दो। यह कोई मामूली आदेश न था। वेरेना प्लीन ने अदालत को बताया कि "मुझे परिणाम से कुछ भी लेना-देना न था, स्वामी मेरे लिए साक्षात् ईश्वर था और उसका आदेश ईश्वरीय आदेश। हमें सिखाया गया था कि कर्म करते जाना ही हमारा अधिकार है, फल की चिंता हमें ईश्वर पर छोड़ देनी चाहिए। अतः हम ईश्वर अर्थात् सवामी के आदेश के पालन में जुट गये और फल की चिंता स्वामी पर छोड़ दी।"

शुरू में तो केन्द्र के सदस्यों ने टोने-टोटके द्वारा पड़ोसियों का अहित करने की कोशिश की, कभी वे उनके दरवाजों पर खून छिड़क देते और कभी उनके बगीचों में कांटेदार अथवा अशुभ माने जाने वाले फल गाड़ देते, मगर इस सब का प्रभाव नहीं हुआ तो ये लोग हिंसा और हत्या पर उतारू हो गये। इस सब का ब्यौरा तब सामने आया, जब 7 अक्तूबर, 1975 की रात को दिव्य ज्योति केन्द्र के सदस्यों ने ज्यूरिख पुलिस अधीक्षक जैकब स्टुकी और अपने एक प्रमुख विरोधी के वकील हॉसर के घरों तक जाने वाले मार्गों पर बमों से भरी हुई पेटियां गाड़ दीं। इनमें से एक पेटी के बम फट गये और जैकब स्टुकी के सोने के कमरे की दीवार तथा कमरे के सामान को नुकसान पहुंचा। मरा कोई नहीं।

पुलिस ने विस्फोट के तुरंत बाद दिव्य ज्योति केन्द्र को घेरे में रखा और उसकी तलाशी ली। तलाशी में उसे केन्द्र के विरोधियों की मोम की प्रतिमाएं मिलीं, जिनमें आंखों, हृदय तथा अन्य अंगों में जहरीली सुइयां गड़ी हुई थीं। यह एक प्रकार का जादू-टोना था तथा इसका प्रयोजन उन लोगों को हानि पहुंचाना था। इन प्रतिमाओं के अतिरिक्त केन्द्र से 10 किलो फॉसजीन गैस प्राप्त हुई, जिसका आविष्कार प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान शत्रु सेना की हत्या करने के लिए किया गया था। इतनी गैस विन्टरदूर की कुल आबादी अर्थात् 90,000 लोगों में से 45,000 लोगों को मार डालने के लिए काफी थी। सौभाग्य की बात है कि पुलिस ने समय रहते ही उस घातक गैस को जब्त कर लिया। केन्द्र से पोटेशियम-साइनाइड, आर्सैनिक, कोबरा-विष, बम बनाने का सामान, बारूद आदि विषैली और घातक सामग्री भी मिली।

पुलिस ने केन्द्र से स्वामी ओंकारानंद के अतिरिक्त पांच अन्य व्यक्तियों—कु. कैथरीन जॉयस विघम, रेडियो इलेक्ट्रीशियन जोसेफ मीख्त्री तथा पश्चिमी जर्मनी के दो युवकों जोआनेस स्खेबेन और थियोदियेम को भी गिरफ्तार किया। इनमें से

दोनों महिलाओं वेरेना प्लीन और कैथरीन बिघम ने स्वामी के विरुद्ध बयान दिये तथा तीनों पुरुषों ने स्वामी को निर्दोष बताया।

कैथरीन बिघम तो जांच के दौरान जांच अधिकारी के साथ प्रेम करने लगी तथा वेरेना प्लीन भी शोयेब नामक युवक के प्रेम में फंस गयी और उसने उसके संग विवाह कर लिया। वे दोनों सरकारी गवाह बन गयीं।

वेरेना प्लीन की तरह ही कैथरीन बिघम ने भी अपने बयान को नाटकीय रूप प्रदान किया। वेरेना प्लीन की तरह ही उसने अपने बयान में कहा, "मैं ईश्वर के आदेश के अनुसार कार्य कर रही थी। मेरे मन में सहानुभूति या घृणा का भाव नहीं था। मैं यंत्र-मानव (रोबोट) की तरह काम करती चली गयी। हमें शत्रुओं के नाश का आदेश मिला था। स्वामी ने स्वयं मुझे यह आदेश दिया था कि मैं उन घरों पर आक्रमण की योजना तैयार करूं, जिनमें केन्द्र के प्रमुख विरोधी रहते थे। जब किसी ने स्वामी के सामने यह विचार पेश किया कि विरोधियों को हानि पहुंचाने के लिए चेचक और हैजे के कीटाणुओं का प्रयोग किया जाये तो स्वामी ने उत्साहपूर्वक स्वीकृति दे दी और उनकी खरीद के आदेश भी दे दिये।"

बिघम ने बताया कि उसने एक पिचकारी द्वारा ये कीटाणु विरोधियों के दरवाजों के हत्थों पर छिड़के। कुछ अवसरों पर उसने कुछ लोगों के घरों की खिड़कियों के रास्ते से उनके कपड़ों पर भी कीटाणु छिड़के। कभी वह टमाटरों में तेजाब भरकर खिड़कियों में रख देती, जिससे कि बच्चे तथा दूसरे लोग उनका इस्तेमाल कर लें और मर जायें। यह सब वह स्वामी के आदेश पर करती रही।

बिघम ने आगे कहा, "हमने चॉकलेट की टिकियों में जहर मिला लिया था। एक बार हमने ज्यूरिख के उस प्रेस-स्वामी की हत्या करने का निश्चय किया, जो हमारे विरुद्ध इश्तहार छापता था। हमने उसे चर्चा के लिए बुलाया और अपनी कार में बिठाकर चल दिये। मीख्त्री कार चला रहा था, स्खेबेन और दियेम उसे बातों में उलझाये रहे। इतने में वेरेना उसके समीप गयी और मैंने उस प्रेस-स्वामी के मुंह में एक जहरीला चॉकलेट ठूंस दिया, जिसे उसने न जाने क्यों तत्काल थूक दिया। उसके साथ ही मैंने भी एक चॉकलेट अपने मुंह में रख लिया, जिससे कि उसे शंका न हो। मुझे मालूम था कि चॉकलेट में जहर है, फिर भी मैं डरी नहीं, क्योंकि मेरी रक्षा के लिए मुझे एक ताबीज दिया गया था, जो मेरी बांह में बंधा हुआ था। संयोग से शायद उस चॉकलेट में जहर नहीं था। मुझे उससे कुछ हानि नहीं हुई।"

बिघम ने अपने बयान में स्वामी पर कोबरा-विष के प्रयोग का आरोप भी लगाया। उसने कहा, "स्वामी ने मेरे सामने खुजली पैदा करने वाले पाउडर में कोबरा का विष मिलाया और आदेश दिया कि उस मिश्रण को विरोधियों के दरवाजों के हत्थों पर पोत दिया जाये, जिससे कि उनके हाथों में खुजली मच जाये तथा जब वे हाथों को खुजलाने लगें तो कोबरा विष उनकी खाल की बारीक शिराओं में प्रवेश करके रक्त में घुल जाये और वे मर जायें। उस दिन मैं मासिक धर्म से थी, अतः मुझे अपवित्र कहकर यह कार्य मुझे नहीं सौंपा गया। उसके लिए

यह सीधा-सादा बच्चों के मन बहलाने वाला जादू नहीं। जी हां, यह काला जादू है, जिससे इसके साधकों के अनुसार किसी की भी जान ली जा सकती है।

फ्रांसीसी युवती मार्तिने को चुना गया।" यह फ्रांसीसी युवती तलाशी के समय ही भाग गयी थी और फिर कभी स्विस पुलिस के हाथ नहीं पड़ी।

खप्पर में वीर्य

वेरेना प्लीन के बयान अपने-आप में सबसे ज्यादा सनसनीखेज रहे। उसने एक बयान में कहा कि वह नर-खोपड़ी की तलाश में इतालवी भाषी कैंटन टेस्सिन के एक मरघट में गयी और वहां से खप्पर चुराकर लायी। "तांत्रिक नरयाना बाबा कभी मेरे साथ संभोग करता और कभी मैं उसके आदेश पर अपने हाथ से उसका मैथुन करती और उसका वीर्य खप्पर में इकट्ठा करती। इसी तरह चूज़े का रक्त इकट्ठा किया जाता और ये चीजें लोगों के घरों पर छिड़की जातीं। यह एक प्रकार का तांत्रिक जादू-टोना था।"

अनुमति नहीं दी। न्यायाधीश ने स्वामी को बताया कि स्विस अदालतों में झूठ पकड़ने वाले यंत्रों का इस्तेमाल नहीं किया जाता। इस पर स्वामी ने आरोप लगाया कि "तब तो यहां स्वयं सत्य ही कटघरे में खड़ा है।"

मुकदमे के दौरान जब न्यायाधीश ने स्वामी को फटकार बताते हुए कहा कि "सच बोलो", तब स्वामी ने आत्मविश्वासपूर्वक उत्तर दिया, "मैं स्वयं ही सत्य हूं और यह मेरा ही प्रभाव है कि वे सब (अन्य प्रतिवादी) अब सच बोल रहे हैं।"

स्वामी ने नरयाना बाबा के बारे में बताया कि वह दैवी शक्ति-संपन्न पुरुष है और उसमें संकल्प-शक्ति से रोग तथा विकार दूर करने की क्षमता है। स्वामी ने वेरेना प्लीन और कैथरीन विघम के इस आरोप को अस्वीकार किया कि हिंसा और हत्या की योजना स्वयं उसने बनायी थी। स्वामी ने कहा कि यह सारी योजना यदि सही है तो इसकी सारी जिम्मेदारी वेरेना और विघम पर है।

स्वामी ने कहा कि उसने किसी को नष्ट करने का आदेश नहीं दिया। उसने केवल इतना कहा था कि शत्रुता को समाप्त कर दो। "मैं शत्रुता को समाप्त करना और घृणा को मिटाना चाहता था। मेरा प्रयोजन यह न था कि किसी को हानि पहुंचायी जाये। मूलतः मेरा अभिप्रायः अपने भीतर के दोषों के विनाश से था। मैंने हमेशा वैधानिक रीति-नीति और विवेक जगाने के मार्ग का अनुसरण किया है। मेरे जीवन का ध्येय मनुष्य मात्र के लिए अधिकाधिक प्रसन्नता और आनंद जुटाना है। मेरे अनुयायी श्रेष्ठ जीवन और प्रेम के मार्ग पर प्रसन्नापूर्वक मेरा अनुगमन करते रहे हैं। मैं महान मूल्यों और आदर्शों की पुनर्स्थापना के लिए चेष्टा कर रहा था।"

चौदह साल की कैद

अदालत ने दो सप्ताह तक मुकदमे की सुनवायी के बाद 22 मई को फैसला सुना दिया। अदालत के पांच न्यायाधीशों की ओर से फैसला अदालत के अध्यक्ष अडोल्फ लुईशिगर ने घोषित किया। हत्या के प्रयास, अवैधानिक शस्त्रास्त्र रखने चोरी और शांति भंग करने के अपराध सिद्ध हो जाने पर स्वामी ओंकारानंद को चौदह वर्ष के कारावास का दंड दिया गया। वेरेना प्लीन को चार साल की और कैथरीन विघम को सवा दो साल की कैद की सजा सुनायी गयी, जिसे अदालत ने माफ कर दिया क्योंकि उन दोनों ने मुकदमे की छानबीन में अदालत और पुलिस को पूरा सहयोग दिया था और वे सरकारी गवाह बन गयी थीं। मीख्त्री, स्खेवेन और दियेम को भी सात से पांच साल के कारावास का दंड सुनाया गया।

मुख्य न्यायाधीश ने फैसला सुनाते समय स्वामी से पूछा कि ऐसी स्थिति में शिष्यों ने हिंसा का मार्ग क्यों अपनाया, तब स्वामी ने उदासीनतापूर्वक कहा कि "मैं स्वीकार करता हूं कि कुछ परिस्थितियों में अनंत प्रेम भी विफल हो जाता है।"

101 साइंस एक्सपेरिमेंट्स

—आइवर यूशियल

नन्हे वैज्ञानिकों के लिए लिखी गई एक ऐसी पुस्तक—जो सरल व रोचक प्रयोगों द्वारा विज्ञान के जटिल सिद्धांतों को समझने में निश्चित रूप से मदद देगी।

प्रयोगों की एक झलक:—

* *कैसे चल पाते हैं जल-सतह पर कीट?*
* *नहाने के बाद क्यों लगती है ठंड?*
* *कमरे में बैठ नापो सितारों की दूरी!*

इसके साथ ही वर्षामापी, सूक्ष्मदर्शी, डायनेमो आदि अनेक उपकरण बनाने की सचित्र विधियां।

मूल्य: 18/- डाकखर्च: 4/- पृष्ठ: 120

English edition also available.

प्रैक्टिकल फोटोग्राफी कोर्स

लेखक : ए. एच. हाशमी

पोर्ट्रेट्स, ग्रुप्स, स्टिल-लाइफ, लैण्डस्कैप, स्पोर्ट्स तथा स्पीड फोटोग्राफी, विवाह-उत्सव, जानवर, प्राकृतिक दृश्यावलियां आदि सभी मौकों के फोटो खींचना सीखो।

°डैवलपिंग °कान्टैक्ट °एन्लार्जमेण्ट °रीटचिंग °डाक्यूमेण्ट कॉपिंग °फिनिशिंग °कलरिंग।

डिमाई साइज: 244 पृष्ठ मूल्य: 24/- डाकखर्च: 4/-

चिल्ड्रन्स ट्रिक्स एण्ड स्टंट्स
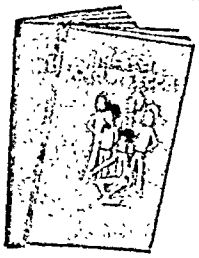
इस सचित्र पुस्तक में तुम पाओगे

* **ऐसी कुर्सी,** *जिसे तुम नहीं उठा सकोगे!*
* **ऐसा गुब्बारा,** *जिसे तुम नहीं फोड़ सकोगे!*
* **अदृश्य मानव,** *जो तुम्हारी आंखों के सामने से गायब हो जाएगा!*
* **अंगुली,** *जो हवा में तैरेगी!*

तुम्हारे दोस्तों को चकरा देने वाली—रहस्यमय, आश्चर्यजनक—लेकिन करने में आसान 70 ऐसी ही अन्य मनोरंजक ट्रिक्स।

मूल्य: 12/- डाकखर्च: 3/- पृष्ठ: 120

Also available in English.

क्विज़ टाइम

-आइवर यूशिएल

मूल्य: 20/-
डाकखर्च: 4/-
पृष्ठ: 128
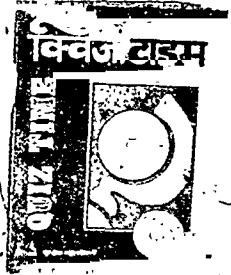
जन-सामान्य तथा विद्यार्थियों के लिए समान रूप से उपयोगी प्रश्नोत्तर शैली में लिखी प्रस्तुत पुस्तक विज्ञान, इतिहास, भूगोल, साहित्य, खेलकूद तथा फिलम जगत से जुड़े आधारभूत 1001 प्रश्नों के सचित्र उत्तर प्रस्तुत करती है।

सुप्रसिद्ध इन्कमटैक्स सलाहकार श्री आर.एस. लखोटिया द्वारा लिखित

वेतनभोगी कर्मचारियों के लिए टैक्स-प्लानिंग

डिमाई साइज: मूल्य: 20

खेल-खेल में जादू सीखो, खेल साइंस के खेलो—ज्ञान बढ़ाओ, रोब जमाओ, मित्रों में यश लेलो

101 मैजिक ट्रिक्स

—आइवर यूशिएल

इस सचित्र पुस्तक में दी गई हैं—ऐसी 101 शानदार व जानदार ट्रिक्स, जिनका समझना जितना सरल है, उनका प्रदर्शन उससे भी आसान! बस! जरूरत है तो थोड़े से अभ्यास के साथ चन्द ऐसी चीजों की, जो तुम्हें आसानी से उपलब्ध हो जाएंगी।

ट्रिक्स की एक झलक: □ टूटी माला फिर तैयार □ *गिलास का पानी गायब करना* □ *रूमाल आग से न जले* □ *सर पर रखा हैट स्वयं उछले आदि....*

मूल्य: 18/- डाकखर्च: 4/- पृष्ठ: 120

Also available in English.

101 साइंस गेम्स

—आइवर यूशिएल
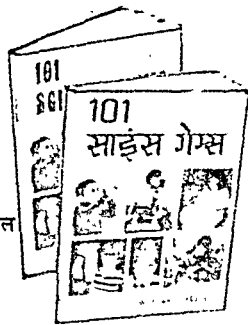
विज्ञान के 101 खेलों की यह पुस्तक खेल ही खेल में कुछ ऐसे वैज्ञानिक उपकरण बनाना सिखा देती है, जो बनेंगे तो खिलौने ही पर बच्चों को बिलकुल असली उपकरण जैसा ही आनंद देंगे। जैसे—**बैरोमीटर, विद्युत-चुम्बक, हैक्टोग्राफ, स्टीम टरबाइन, इलेक्ट्रोस्कोप आदि....**

इनके अलावा बहुत से अन्य रोचक प्रयोग जैसे—***कागज के बर्तन में पानी उबालना, भाप से नाव चलाना आदि*** 101 मनोरंजक जादू से प्रतीत होने वाले वैज्ञानिक खेल।

मूल्य: 18/- डाकखर्च: 4/- पृष्ठ: 120

English edition also available.

Learn science while you play

Science Quiz Book

* Most useful for 10+2 Courses.
* Covers the most modern topics of science like Computer/Robots/ Space/ Electronics/ Laser/Maser etc.
  For better performance in Viva examinations.
  To meet the challanges of Science Quiz programmes on Radio/TV.
  For Competetions like M.B.B.S., Engineering etc.
  All interviews connected with scientific services/posts.

Price 18/- Postage: 4/- Pages: 112

Get your child admitted in a public school
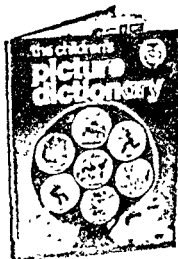
CHILDREN'S PICTURE DICTIONARY

All in colour

- Successfully prepares your child for admission in a Public School.
- Contains 1500 words of daily use.
- Each & every word has been explained with colourful pictures & small & simple sentences.

The Dictionary is really a treasure-trove of knowledge for your children wherein they will discover the names of... • *Birds* • *Animals* • *Fruits* • *Vegetables* • Colours • *Parts of Body etc.*

Giant Size...

बच्चों को इंटेलीजेंट बनाने वाला अद्भुत नॉलिज बैंक

बच्चों के मस्तिष्क में घुमड़ने वाले हजारों अनबूझे 'क्यों और कैसे'
किस्म के प्रश्नों के उत्तर बताने वाला एक अनूठा प्रकाशन

चिल्ड्रन्स नॉलिज बैंक (छः खण्डों में)

बच्चे के मस्तिष्क के लिए एक टॉनिक

जरा सी समझ आते ही बच्चे के मस्तिष्क में 'क्यों' और 'कैसे' किस्म के हजारों प्रश्न घुमड़ने लगते हैं। उचित समय पर मिले प्रश्नों के उत्तर उसके दिमाग के लिए टॉनिक का काम करते हैं जबकि उत्तर न मिलने से उसका मानसिक विकास रुक जाता है।

6 खण्डों की इस श्रृंखला में हैं.....

- 1300 बड़े आकार के पृष्ठ
- 1100 से अधिक चित्र
- 5,00,000 शब्दों की पाठ्य-सामग्री
- 1050 प्रश्नों के सुबोध उत्तर

मूल्य:
पेपरबैक: 28/- डाकखर्च: 5/- प्रत्येक
पूरा सेट: 168/- (गिफ्ट बॉक्स में) डाकखर्च माफ

अंग्रेजी तथा 8 भारतीय भाषाओं में प्रकाशित

प्रश्नों में से कुछ की झलक

☐ महिलाओं की दाढ़ी क्यों नहीं होती? ☐ क्या अन्य ग्रहों से लोग पृथ्वी पर आते हैं? ☐ आकाश नीला क्यों है? ☐ मुंहासे क्यों होते हैं? ☐ टेस्ट ट्यूब बेबी क्या है? ☐ सपने क्यों दिखाई देते हैं? ☐ इलेक्ट्रानिक घड़ी कैसे काम करती है? ☐ मिस्र में ममी कैसे बनाते थे? ☐ उड़न-तश्तरी क्या है? ☐ एल.एस.डी क्या है? ☐ हाइड्रोजन बम क्या है? आदि ...

विशेषताएं

- 50 लाख से भी अधिक पाठकों की पसंद
- विद्यालयों में पुरस्कार के रूप में वितरित
- प्रत्येक खण्ड अपने आप में संपूर्ण
- पत्र-पत्रिकाओं द्वारा प्रशंसित

आधारभूत विषय

★ पृथ्वी एवं ब्रह्मांड ★ आधुनिक विज्ञान ★ वनस्पति एवं पशु-पक्षी जगत ★ आविष्कार एवं खोजें ★ खेल एवं खिलाड़ी ★ आश्चर्य एवं रहस्य ★ सामान्य ज्ञान ★ मानव शरीर ★ भौतिक-रसायन एवं जीव विज्ञान आदि

वृहद् हस्तरेखा शास्त्र

- आप खुद अपने हाथ की रेखाएं पढ़कर अपना भविष्यफल जान सकते हैं। किसी पण्डित अथवा ज्योतिषी के पास जाने की आवश्यकता नहीं है।
- हस्तरेखा के 240 विभिन्न योगों का पहली बार प्रकाशन, जैसे—आपके हाथ में धन-संपत्ति का योग, पुत्र-योग, विदेश-यात्रा योग आदि हैं या नहीं?
- आपके हाथ की रेखाएं क्या कहती हैं? कौन से व्यापार से आपको लाभ होगा? नौकरी में तरक्की कब तक होगी? पत्नी कैसी मिलेगी? इत्यादि सैकड़ों प्रश्नों के उत्तर।

डिमाई साइज: 348 पृष्ठ मूल्य: 28/- डाकखर्च: 5 -

Also available in English.

प्रैक्टिकल हिप्नोटिज्म

- पुस्तक में हिप्नोटिज्म को सरल-सरस ढंग से चित्रों द्वारा समझाया गया है, जिससे साधारण पाठक भी एक अच्छा सम्मोहन विशेषज्ञ बन सकता है।
- पुस्तक में हिप्नोटिज्म के प्रकार, पयोग, शक्ति, हिप्नोटिज्म के सिद्धांत, त्राटक, सम्मोहन के तथ्य आदि पर पूर्ण प्रामाणिकता के साथ सचित्र विवरण है।
- रोग-निवारण, कष्ट दूर करने व जीवन में प्रतिदिन आने वाली बाधाओं व आपदाओं के निराकरण में इस पुस्तक में दिया गया विवरण पूर्णतया उपयोगी है।

डिमाई साइज. 266 पृष्ठ मूल्य: 30/- डाकखर्च: 5/-

Also available in English.

इंग्लैंड के प्रसिद्ध डाक्टरों एवं विशेषज्ञों द्वारा लिखित प्रसिद्ध ब्रिटिश

पॉकेट हैल्थ गाइड्स

(अब हिन्दी में भी उपलब्ध)

पॉकेट हैल्थ गाइड्स इन बीमारियों के कारणों, जटिलताओं, सावधानियो तथा रोकथाम के उपायों के बारे में आपका ज्ञानवर्द्धन करेंगी।

मूल्य: 5 - प्रत्येक
डाकखर्च: 3/- प्रत्येक

हिन्दी में 16 तथा अंग्रेजी में 18 हैल्थ गाइड्स

- एलर्जी *(Allergies)*
- रक्तक्षीणता *(Anaemia)*
- संधिशोथ एवं गठिया *(Arthritis & Rheumatism)*
- दमा *(Asthma)*
- पीठ का दर्द *(Back Pain)*
- बच्चों के रोग *(Children's Illnesses)*
- रक्त-संचार की समस्याएं *(Circulation Problems)*
- अवसाद और चिंता *(Depression & Anxiety)*
- मधुमेह *(Diabetes)*
- उच्च रक्तचाप *(High Blood Pressure)*
- हृदय रोग *(Heart Trouble)*
- रजोनिवृत्ति *(The Menopause)*
- आधासीसी का दर्द *(Migraine)*
- पैप्टिक अल्सर *(Peptic Ulcers)*
- रजोपूर्व तनाव *(Pre-Menstrual Tension)*
- त्वचा-रोग *(Skin Troubles)*
- *Cystitis* • *Hysterectomy*

ट्रिक फोटोग्राफी एंड कलर प्रोसेसिंग

—ए.एच. हाशमी

....बोतल के भीतर आदमी, हथेली पर नाचती औरत, सेब में से झांकते बच्चे या पत्ते पर प्रेमिका का फोटो उतारिए!

ट्रिक फोटोग्राफी पर हिंदी में प्रथम पुस्तक—जिसमें ट्रिक और इफेक्ट की पूरी-पूरी प्रैक्टिकल जानकारी चित्रों के साथ दी गई है. इसके अलावा....

कलर फोटोग्राफी व कलर प्रोसेसिंग की प्रैक्टिकल जानकारी भी इसमें है, जिसकी मदद से आप निगेटिव या ट्रांसपेरैंसी की प्रोसेसिंग कर सकते हैं और अच्छे कलर एन्लार्जमैन्ट भी बना सकते हैं।

डिमाई साइज पृष्ठ: 248
मूल्य 24/- डाकखर्च: 4

मूल्य: 18/-
डाकखर्च: 4/-

मूल्य: 30/-
डाकखर्च: 5/-

तांत्रिक सिद्धियां

मंत्र-अध्येताओं, तांत्रिकों एवं साधकों के लिए ऐसी पथ-प्रदर्शक पुस्तक जिसमें दुष्कर तांत्रिक क्रियाओं का सरल एवं सचित्र विवरण है।

मंत्र रहस्य

मंत्रों के मूल स्वरूप, मंत्र-चैतन्य, मंत्र कीलन-उत्कीलन, मंत्र-ध्वनि, मंत्र-विनियोग एवं मंत्रों के सफल प्रयोगों के लिए सचित्र ग्रन्थ।

Believe it or Not

संसार के 1500 अद्भुत आश्चर्य

पुस्तक में कुदरत के चमत्कारों, अद्भुत ऐतिहासिक घटनाओं, बादशाहों की अजीबो-गरीब सनकों, साहस और वीरता के बेमिसाल कारनामो, पृथ्वी, समुद्र और आकाश के जीव-जन्तुओं और वनस्पतियों की अनजानी विचित्रताओं का सचित्र वर्णन किया गया है।

मूल्य: 30/- डाकखर्च: 5/- पृष्ठ: 224

- दुर्गा महिमा
- शिव महिमा
- विष्णु महिमा
- लक्ष्मी महिमा
- गणेश महिमा
- हनुमान महिमा

पुस्तकों में महिमाओं के अतिरिक्त पूजा के मंत्र, नैवेद्य आदि की विधियां भी हैं।

तीर्थ-यात्रा का सफल गाइड

हमारे पूज्य तीर्थ

बड़े 208 पृष्ठ
मूल्य: 24/-
डाकखर्च: 4/-

यह पुस्तक आपको, तीर्थो की धार्मिक, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, उपयोग में आने वाले साज-सामान, आने-जाने के मार्ग का निर्देश, ठहरने आदि की वांछित जानकारी प्रदान करेगी।

Out with all Stains

Spot Check

Straightforward tips to cope with all types of stains. A full section on fabrics with a comprehensive chart. Tackle stains on Wallcoverings, Carpets, Pots, Furniture, Metals etc.

यह पुस्तक हिन्दी में भी उपलब्ध है।

Price: Rs. 12/- Postage: Rs. 3/-

घर में ही ब्यूटी क्लीनिक

होम ब्यूटी क्लीनिक

–परवेश हांडा

घर-बैठे ब्यूटी क्लीनिक जैसे मेकअप की विधियां सिखानें वाली एक ऐसी पुस्तक, जिसमें त्वचा की देखभाल, शरीर को सुडौल बनाने संबंधी व्यायाम तथा आकर्षक हेयर स्टायल्स आदि की संपूर्ण जानकारी दी गई है।

बड़े 140 पृष्ठ मूल्य: 24/- डाकखर्च: 4/-

समय और धन की बचत करें

गृह-उपयोगी नुक्ते

(Home Hints)

Also available in English.

चीजों के लंबे समय तक विना सड़े-गले भंडारण की विधियां, बोतलों, टी-पॉट आदि की सफाई सहित हजारों नुक्तों का एक वहुरंगी सचित्र संकलन।

मूल्य: 12/- डाकखर्च: 3/-

आधुनिक केश-सज्जा सीखो

मॉडर्न हेयर स्टायल्स

-आशारानी व्होरा

मूल्य: 18/- डाकखर्च: 4/-

इस पुस्तक की मदद से किसी भी प्रकार की हेयर सैटिंग घर में ही कीजिए। वॉय-कट, वॉव-कट, राउण्ड-कट, स्ट्रेट-कट, फीजर-कट, स्टैप्स, पोनी-टेल, रिंगलट्स, शोल्डर-कट, शेग-स्टायल या स्विच-सज्जा–

कमर पतली कीजिए

लेडीज स्लीमिंग कोर्स

केवल ***15 मिनट*** रोज के इस कोर्स की मदद से आप अपनी कमर और पेट पर चढ़ी फालतू चरवी शीघ्र ही घटा सकती हैं और अपनी कमर का नाप **पांच दिन में सात-आठ सेंटीमीटर** तक कम कर सकती हैं।

18 विशेषज्ञ डाक्टरों के इंटरव्यू पर आधारित

बेबी हेल्थ गाइड

-आशारानी व्होरा

यह गाइड बच्चों के ...
अनूठा एनसाइक्लो...
शारीरिक ...
के सभी ...